

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष
९२

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या
९

गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान



भगवान् गणेश

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष

१२

गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, सितम्बर २०१८ ई०

संख्या

९

पूर्ण संख्या ११०२

गणपति-स्तवन

नमामि देवं द्विरदानं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम् ।
धर्मार्थकामास्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥
कृपानिधे ब्रह्ममयाय देव विश्वात्मने विश्वविधानदक्ष ।
विश्वस्य बीजाय जगन्मयाय त्रैलोक्यसंहारकृते नमस्ते ॥
त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय ।
नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरीहाय नमोऽस्तु नित्यम् ॥

मैं उन भगवान् गजानन गणेशजीको प्रणाम करता हूँ, जो लोगोंके सम्पूर्ण विघ्नोंका हरण करते हैं। जो सबके लिये धर्म, अर्थ और कामकी उपलब्धि कराते हैं, उन विघ्नविनाशकको नमस्कार है। हे कृपानिधान! हे विश्वका विधान करनेमें दक्ष! आप ब्रह्ममय, विश्वात्मा, विश्वके बीजरूप, जगन्मय, त्रैलोक्यका संहार करनेवाले हैं; हे देव! आपको नमस्कार है। वेदत्रयीस्वरूप, अखिल बुद्धिदाता, बुद्धिप्रदीप, सुरेश्वर, नित्य, सत्य, नित्यबुद्ध, नित्य निष्काम आपको नित्य नमस्कार है। [गणेशपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, सितम्बर २०१८ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- गणपति-स्तवन	३	१४- आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन	
२- कल्याण	५	(पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)	२७
३- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान		१५- सभोका ईश्वर एक [प्रेरक-प्रसंग]	३०
[आवरणचित्र-परिचय]	६	१६- संत-संस्मरण	
४- पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा		(मल्लूकपीठाधीश्वर श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन	
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	ऋषिकेशमें हुए सत्संगसे)	३१
५- जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	९	१७- गोपियोंके स्वर [कविता]	
६- साधनामें दैन्यभावका महत्त्व		(श्रीमती करुणा मिश्रा)	३१
(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	१४	१८- अहैतुकी कृपा करनेवाले अतिशय दयालु प्रभु	
७- कर्मफल [बोधकथा] (श्रीराजेशजी माहेश्वरी)	१६	(श्रीहरी मोहनजी)	३२
८- कृतज्ञता (श्रीअगरचन्दजी नाहटा)	१७	१९- श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) [संत-चरित]	
९- संतकी सहनशीलता [प्रेरक-प्रसंग]	२०	(श्री 'मातृशरण')	३५
१०- केवल भगवान् ही अपने हैं [साधकोंके प्रति]		२०- आतिथेयी [गोभक्ति-कथा] (पं० श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय) ..	३८
(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	२१	२१- श्रमका फल [प्रेरक-प्रसंग]	४२
११- अनमोल बोल	२२	२२- ब्रतोत्सव-पर्व [आश्विनमासके व्रत-पर्व]	४३
१२- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत		२३- साधनोपयोगी पत्र	४४
पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	२३	२४- कृपानुभूति	४६
१३- सात दिनका मेहमान [कहानी]		२५- पढ़ो, समझो और करो	४७
(पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार')	२४	२६- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् गणेश	(")	मुख-पृष्ठ
३- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान	(इकरंगा)	६
४- बाण बनानेवालेकी एकाग्रता	(")	२३

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥

जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥

जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क—भुगतानहेतु-gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—सच्ची शरणागति भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण हो जानेपर ही सिद्ध होती है, और सच्चा आत्मसमर्पण वह है, जिसमें अपने पास अपना कुछ रहे ही नहीं; शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार, चेतना सभी कुछ श्रीभगवान्‌के हो जायँ।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह भगवान्‌के कार्यका आधार बन जाता है। उसके द्वारा फिर जो कुछ भी क्रिया होती है, सब भगवान्‌की ही होती है; उसका अपना अपने लिये पृथक् कुछ रहता ही नहीं।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह सदा सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक यन्त्रकी भाँति भगवान्‌का कार्य करता रहता है। वह किसी भी स्थितिमें प्रतिकूलताका अनुभव नहीं करता। उसकी प्रतिकूलता-अनुकूलता भगवान्‌की मंगलमयी इच्छामें मिलकर नित्य सम उल्लासमयी स्थितिके रूपमें परिणत हो जाती है।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह इस जगत्‌को दूसरे लोगोंकी भाँति जड, अनित्य और दुःखपूर्ण नहीं देखता, उसकी आँखें बदल जाती हैं और वह इस चराचरात्मक समस्त जगत्‌को प्रतिक्षण शाश्वत चिदानन्दमय श्रीभगवान्‌के रूपमें देखता है एवं इसके प्रत्येक परिवर्तन और सृजन-संहारमें वह भगवान्‌की दिव्यलीलाका अनुभव करके आनन्दमग्न रहता है।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है, वह नित्य परम शान्तिको प्राप्त करता है। अशान्ति या चित्तकी चंचलता तभीतक रहती है, जबतक चित्तमें जन्म-मृत्यु—जगत्‌के अनन्त अनित्य दृश्य भरे रहते हैं, और जब चित्त भगवान्‌के चित्तमें

मिलकर घुल-मिल जाता है, तब वह नित्य शान्तिमय भगवान्‌का निवासस्थल बन जाता है। सागरके ऊपर-ऊपर ही तरंगें उछलती हैं, उसका गम्भीर अन्तस्तल अत्यन्त शान्त होता है, इसी प्रकार चित्त जबतक बाहरी जगत्‌में रमता है, तबतक उसकी चंचलता नहीं मिटती, पर वही जब अनन्त अथाह गहराईमें जाकर भगवान्‌को पा जाता है, तब सर्वथा शान्त स्थितिमें पहुँच जाता है।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है—आनन्दका दिव्य और अटूट भण्डार बन जाता है। उसके द्वारा नित्य आनन्दका स्रोत बहता रहता है और वह जगत्‌के अनेकानेक त्रितापतप्त प्राणियोंको दिव्य शान्तिमयी आनन्दसुधाधारामें बहाकर उनके तापको सदाके लिये मिटा देता है।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है—वह यदि कुछ भी नहीं करता, तब भी उसका जगत्‌मे अस्तित्वमात्र ही जगत्‌के कल्याणमें बहुत बड़ा सहायक बनता है। और जो महापातकी लोग भी उसके सम्पर्कमें आ जाते हैं, उनका भी जीवन पलट जाता है। वे घोर नरकसे निकलकर दिव्य भगवद्धाममें पहुँच जाते हैं। और वे भी तरण-तारण बन जाते हैं।

याद रखो—जिसने भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है—उसके लिये भगवान्‌का दिव्य धाम उतर आता है, वह नित्य भगवद्धाममें ही सोता-जागता, चलता-फिरता, खाता-पीता और सारी क्रियाएँ करता है। वह कभी भगवान्‌से अलग नहीं होता और भगवान्‌ कभी उससे अलग नहीं होते। उसके भीतर-बाहर सर्वत्र सदा भगवान्‌ ही भरे रहते हैं।

‘शिव’

गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान



गयाधामका श्राद्धादिकर्म पितरोंके लिये अक्षयतृप्तिकारक तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला है, इससे श्राद्धकर्ताका भी परम कल्याण होता है। यहाँ आदिदेव भगवान् गदाधर व्यक्त और अव्यक्त रूपका आश्रय ले पितरोंकी मुक्तिके लिये विष्णुपद आदिके रूपमें विद्यमान हैं। वहाँ जो दिव्य विष्णुपद है, वह दर्शनमात्रसे पापका नाश करनेवाला है। स्पर्श और पूजन करनेपर वह पितरोंको मोक्ष देनेवाला है। विष्णुपदमें पिण्डदानपूर्वक श्राद्ध करके मनुष्य अपनी सहस्र पीढ़ियोंका उद्धार करके उन्हें विष्णुलोक पहुँचा देता है। रुद्रपद अथवा शुभ ब्रह्मपदमें श्राद्ध करके पुरुष अपने ही साथ अपनी सौ पीढ़ियोंको शिवधाममें पहुँचा देता है। दक्षिणाग्निपदमें श्राद्ध करनेवाला वाजपेय-यज्ञका और गार्हपत्यपदमें श्राद्ध करनेवाला राजसूय-यज्ञका फल पाता है। चन्द्रपदमें श्राद्ध करके अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। सत्यपदमें श्राद्ध करनेसे ज्योतिष्ठोम-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। आवसथ्यपदमें श्राद्ध करनेवाला चन्द्रलोकको जाता है और इन्द्रपदमें श्राद्ध करके मनुष्य अपने पितरोंको इन्द्रलोक पहुँचा देता है। दूसरे-दूसरे देवताओंके जो पद

हैं, उनमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष अपने पितरोंको ब्रह्मलोकमें पहुँचा देता है। उन सबमें काश्यपपद श्रेष्ठ है। विष्णुपद, रुद्रपद तथा ब्रह्मपदको सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आरम्भ और समाप्तिके दिनमें इनमेंसे किसी एक पदपर श्राद्ध करना श्राद्धकर्ताके लिये भी श्रेयस्कर होता है।

नारदपुराणमें आया है कि भगवान् श्रीराम जब पितृतीर्थ गयाजीके रुद्रपदमें आकर पिता आदिको पिण्डदान करने लगे तो उसी समय पिता दशरथ स्वर्गसे हाथ फैलाये हुए वहाँ आये, किंतु श्रीरामजीने उनके हाथमें पिण्ड नहीं दिया। शास्त्रकी आज्ञाका उल्लंघन न हो जाय, इसलिये उन्होंने रुद्रपदपर ही उस पिण्डको रखा। तब दशरथजीने कहा—‘पुत्र ! तुमने मुझे तार दिया। रुद्रपदपर पिण्ड देनेसे मुझे रुद्रलोककी प्राप्ति हुई है। तुम चिरकालतक राज्यका शासन, अपनी प्रजाका पालन तथा दक्षिणासहित यज्ञोंका अनुष्ठान करके अपने विष्णुलोक जाओगे। तुम्हारे साथ अयोध्याके सब लोग, कीड़े-मकोड़ेतक वैकुण्ठधाम जायँगे।’ श्रीरामसे ऐसा कहकर राजा दशरथ उत्तम रुद्रलोकको चले गये और श्रीरामजीने भी पिण्डदानकी प्रक्रिया पूर्णकर परम संतोष प्राप्त किया।

इसी प्रकार पूर्वकालमें भीष्मजीने विष्णुपदपर श्राद्ध करते समय अपने पितरोंका आवाहन करके विधिपूर्वक श्राद्ध किया और जब वे पिण्डदानके लिये उद्यत हुए, उस समय गयाशिरमें उनके पिता शन्तनुके दोनों हाथ सामने निकल आये, परंतु भीष्मजीने भूमिपर ही पिण्ड दिया; क्योंकि शास्त्रमें हाथपर पिण्ड देनेका अधिकार नहीं दिया गया है। भीष्मके इस व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर शन्तनु बोले—‘बेटा ! तुम शास्त्रीय सिद्धान्तपर दृढ़तापूर्वक डटे हुए हो, अतः त्रिकालदर्शी होओ और अन्तमें तुम्हें भगवान् विष्णुकी प्राप्ति हो; साथ ही जब तुम्हारी इच्छा हो, तभी मृत्यु तुम्हारा स्पर्श करे।’ ऐसा कहकर शन्तनु मुक्त हो गये।

पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

यद्यपि पाप-पुण्यका विषय बहुत गम्भीर है तथा इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है, तथापि संक्षेपमें, साररूपसे यही कहा जा सकता है कि 'मानव-कर्तव्य ही पुण्य या सुकृत है और अकर्तव्य ही पाप या दुष्कृत है।'

पुण्य-पाप अथवा कर्तव्य-अकर्तव्यके निर्णयमें शास्त्र (धर्मग्रन्थ) ही प्रमाण हैं, इसीलिये गीता (१६।२४) में श्रीभगवान्ने अर्जुनसे कहा कि—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥

'अतएव तेरे लिये इस कर्तव्य और अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है, ऐसा जानकर तुझे शास्त्रविधिसे नियत किये हुए कर्म ही करना चाहिये।' परंतु जिस मनुष्यका ईश्वर और शास्त्रमें विश्वास नहीं है, शास्त्रकी व्यवस्था न माननेपर भी उसके लिये भी मानव-कर्तव्य ही पुण्य है और अकर्तव्य ही पाप है। अब यह प्रश्न आता है कि शास्त्रको न माननेवाला मनुष्य कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय किस प्रकार करे? इसका उत्तर यह है कि उसे प्राचीन और वर्तमान महापुरुषोंके किये हुए निर्णय और आचरणको प्रमाण मानकर अपने कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करना चाहिये। इसपर यदि कहा जाय कि किसीकी दृष्टिमें कोई महापुरुष हैं और किसीकी दृष्टिमें कोई और उन महापुरुषोंमें भी मतभेद है, ऐसी स्थितिमें वह क्या करे? तो इसका उत्तर यह है कि जिसकी दृष्टिमें जो महापुरुष हैं, उसको उन्हींका आचरण और निर्णय मानना चाहिये। इसपर यदि यह कहा जाय कि तब तो माननेवालेकी बुद्धि ही प्रधान रही, सो ठीक ही है; जो धर्मशास्त्र और ईश्वरको नहीं मानते, उन्हें तो अपनी ही बुद्धिपर निर्भर रहना पड़ेगा। अपनी बुद्धिके निर्णय में भूल हो सकती है, इसीलिये महापुरुषोंने शास्त्रप्रमाण माननेके लिये कहा है। शास्त्रको प्रमाण न माननेवालोंको किसी महापुरुषके वचन प्रमाणरूप मानने पड़ेंगे और यदि किसी महापुरुषपर भी विश्वास न हो तो उन्हें अपनी बुद्धिका ही आश्रय ग्रहण करना पड़ेगा। अतएव ऐसे पुरुषोंको अपनी बुद्धिसे

किये हुए निश्चयके अनुसार ही कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्था करनी पड़ती है।

अब यह बात बुद्धिसे सोचनी चाहिये कि मनुष्यके लिये वस्तुतः कर्तव्य और अकर्तव्य क्या हो सकता है? इस प्रकारसे सोचनेकी बुद्धि मनुष्यमें ही है, पशु-पक्षी आदि अन्यान्य जीवोंमें नहीं। इसलिये यह बात मनुष्यपर ही लागू होती है। जो मनुष्यका शरीर प्राप्त करके कर्तव्याकर्तव्यका विचार किये बिना ही कार्य करता है, वह मनुष्यत्वसे गिर जाता है; वास्तवमें ऐसा मनुष्य मानवशरीरमें भी पशुके ही तुल्य है।

संसारमें दो वस्तुएँ प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं—(१) चेतन और (२) जड़। जो द्रष्टा है, वह चेतन है और जो दृश्य है, वह जड़ है। द्रष्टा भोक्ता है, दृश्य भोज्य है। द्रष्टाके ही लिये दृश्य है। त्याग-बुद्धिसे ज्ञानपूर्वक दृश्यका उपभोग करनेमें मुक्ति है अर्थात् इस चेतनका दुःख और पापोंसे मुक्त होकर परम आनन्द तथा परम शान्तिमें निवास है। बिना समझके उपभोगसे बन्धन, पतन, अशान्ति और दुःख है।

अतएव जो कर्म अपने या किसी भी अन्य चेतन जीवके लिये इस लोक और परलोकमें वस्तुतः लाभजनक है, वही कर्तव्य है और जिससे अपना या अन्य किसी जीवका इहलोक और परलोकमें अहित होता है, वही अकर्तव्य है। इसी कर्तव्य-अकर्तव्यको विधेय-निषेध, शुभ-अशुभ, कार्य-अकार्य या पुण्य-पाप कहा जा सकता है।

इसी प्रकार इस लोक और परलोकमें प्राप्त होनेवाले सुखके साधनरूप जो जड़ पदार्थ हैं, उनकी भी वृद्धिका यत्न करना पुण्य और क्षयका प्रयत्न पाप है। यही पुण्य-पापका संक्षिप्त विवेचन है।

किसी प्रकारसे किसीको दुःख पहुँचाना ही पाप है। अपने शरीरका उदाहरण सामने रखकर इसपर विचार करना चाहिये। विवेकशील मनुष्य दूसरोंके प्रति ऐसा कभी कुछ नहीं करता, जिसे वह अपने लिये अवांछनीय समझता हो। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है कि चोट लगनेपर या मारनेपर जैसी पीड़ा हमलोगोंको

जिस मनुष्यका जन्म और पालन-पोषण मांसाहारी कुल और वातावरणमें हुआ है तथा लड़कपनसे जिसका वैसा स्वभाव है, उसके लिये भी मांसाहार सर्वथा त्याज्य है। मनुष्यको विवेककी बड़ी सम्पत्ति प्राप्त है, जब उसको यह समझ आ जाय कि दूसरोंके द्वारा पीड़ा पहुँचानेपर या मारनेपर मुझे दुःख होता है, तभीसे उसको यह सोचना चाहिये कि जैसा दुःख मुझको होता है, ऐसा ही दूसरे प्राणियोंको भी होता है और दूसरे प्राणियोंके मरने-मारनेके समय होनेवाले भयंकर कष्टको मांसाहारी देखता-सुनता भी है। ऐसी दशामें मनुष्य होनेके कारण उसके लिये मांसाहार करना पाप ही है और उसे मांसाहारको पाप समझकर तुरंत ही त्याग देना चाहिये। मांसाहार मनुष्यके लिये अत्यन्त जघन्य कर्म है। मांसाहार कभी नहीं करना चाहिये।

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं!

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

बात है इसी नागपंचमीकी।

दोपहरको भोजन करके लेटा ही था कि कमरेमें धम्मसे आवाज हुई। देखा, ऊपर दीवालके मुक्केसे बिल्ली कूदी।

और यह क्या?

उसके मुँहमें दबा था एक कबूतर!

कुछ देर पहले कबूतरोंकी इधर-से-उधर भाग-दौड़ मैंने देखी थी। सोचा था कि वे आपसमें विनोद कर रहे हैं। मुझे क्या पता था कि मौतको सिरपर मँडराते देखकर वे जीवनके लिये दौड़ादौड़ी मचाये हुए हैं। बिल्लीके पीछे दौड़ा कि वह कबूतरको छोड़ दे, पर वह भला क्यों छोड़ने लगी?

वह छतपर भागी। इधर-उधर खूनके धब्बे पड़े थे, रास्तेमें।

ऊपरकी भण्डरियामें कबूतरको पंख फड़फड़ाते सुनकर बिल्लीको ललकारा तो वह उसे छोड़कर नीचे भागी।

जाकर देखा तो बेचारा कबूतर शान्त हो चुका था!

बाबा कबीरदास मानो कानमें आकर गुनगुनाने लगे—
मीचु बिलइया खैहे रे।

ऐशो इहु संसार पेखना, रहन न कोऊ पड़है रे।

सूधे सूधे रँग चलहु तुम नतरु कुधका दिवइहै रे॥

बारे बूढ़े तरुने भइआ सभहू जम लै जइहै रे।

मानुस बपुरा मूसा कीनो, मीचु बिलइया खैहे रे॥

धनवंता अरु निरधन मनई ताकी कछू न कानी रे।

राजा परजा सभ करि मारै ऐसो कालु बडानी रे॥

जीवनका अन्तिम सत्य है मृत्यु!

संसारमें और सब अनिश्चित है, निश्चित है केवल

एक मृत्यु।

कहावत भी है कि 'इट इज ऐज श्योर ऐज डेथ।'।

'मृत्युकी भाँति निश्चित।'।

रूप राशि पर गर्व न करना ओ फूलों की रानी।

समय रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी॥

लाखका घर पलभरमें खाक हो जाता है। बने-

बनाये महल आनन-फानन जमीनमें लोटने लगते हैं। रूप-राशि, धन और यौवन, पद और सम्मान—सब कुछ देखते-देखते स्वाहा हो जाता है। पर वाह रे, कारीगर! धन्य है तेरी कला! तेरा चक्कर अद्भुत है। आदमी इसी गोरखधन्धेमें फँसा इसी मायाजालमें डूबता-उतराता रहता है।

हम जाने थे खायेंगे, बहुत जमीं बहु माल।

ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकड़ ले गया काल॥

कालदेव आते हैं और पलभरमें हमारी मुशकें बाँधकर चल देते हैं। न उनके आनेकी घड़ी निश्चित, न उनके आनेका बहाना निश्चित।

कभी रोग है तो कभी बीमारी। कभी आग है तो कभी तूफान। कभी महामारी है तो कभी और कुछ। कभी साँपके रूपमें वे काट खाते हैं तो कभी सिंहके रूपमें फाड़ खाते हैं।

कालदेवको न रहम है, न दया। घड़ीकी सुई ठिकानेपर पहुँची नहीं कि बस, उन्होंने अपना फन्दा कसा। रहिये आप बड़े बहादुर, रहिये आप बड़े शूरवीर, रहिये आप लखपती-करोड़पती—उनके आगे आपकी दाल नहीं गल सकती। डॉक्टर और वैद्य, हकीम और तबीब, सुइयाँ और गोलियाँ—सब बेकार रहती हैं, बिलकुल बेकार। तभी तो—

आस पास जोधा खड़े सभी बजावें गाल।

मंझ महलसे ले चला ऐसा काल कराल॥

भूलोकका सर्वोच्च अधिकारी है—यमराज। उसके आगे किसीकी दाल नहीं गल पाती!

× × ×

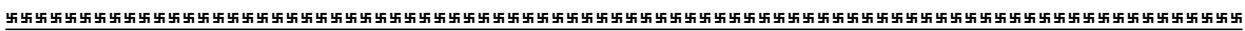
सोचनेकी बात है कि कैसा होता है वह दिन—
जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं।

घर के कहें बेगि ही काढ़ी, भूत भये कोउ खैहैं॥

जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं।

स्त्रियों और पुरुषोंको, हर उम्रके लोगोंको, छोटेसे
दुधमूँहे बच्चोंको, जवानों और बड़ों-बूढ़ोंको मैंने दम



तोड़ते देखा है। उनकी शवयात्राके साथ श्मशान जानेके जीवनमें अनेक मौके आये हैं। कभी हितू-मित्रोंकी, सगे-सम्बन्धियोंकी, परिचितोंकी शवयात्राके साथ गया हूँ, तो कभी यों ही मणिकर्णिकाका दृश्य देखने चला गया हूँ। रास्तेमें पिण्डदान करते समय पुरोहित कहता है—‘श्मशान-मार्गमें यह पिण्ड दिया जा रहा है।’ सोचता हूँ शवकी यात्रा तो सभी राजपथोंसे होती है, तो जिधर देखिये उधर श्मशान-मार्ग ही तो है!

और श्मशानमें देखिये—

कहीं किसीकी चिता लगायी जा रही है, कहीं किसीके बच्चेका जलप्रवाह किया जा रहा है। कहीं चिता सुलग रही है, कहीं चिता धधक रही है। कभी-कभी तो १०-१०, १५-१५ चिताएँ एक साथ धधकती हैं। कहीं हड्डियाँ पड़ी हैं, कहीं खोपड़ी। कहीं कौए हैं, कहीं गीध हैं, कहीं कुत्ते हैं—लाशोंको नोच रहे हैं। सगे-सम्बन्धी बिलखते हैं, रोते हैं, चिल्लाते हैं।

जगत्की नश्वरता, क्षण-भंगुरताका यह सारा दृश्य देखकर जी भर आता है। आँखें भर आती हैं। कभी-कभी फूट-फूटकर रोनेको भी जी मचलने लगता है।

परंतु ? कितनी देर टिकता है यह श्मशान-वैराग्य ? घाटपर ही मन तरह-तरहके सब्जबाग दिखाने लगता है—‘अरे मूर्ख, जो गया सो गया। मौत आयेगी, तब देखा जायगा। अभीसे उसकी चिन्ता क्यों करता है ? जीवन तेरे सामने है। जीवनके नाना प्रकारके भोग तेरे सामने हैं। उनका मजा ले। दुनियाके बागकी बहार लूट। यह बहार चन्द्रोजा है तो भी क्या ? सुख क्षणिक है तो भी क्या ?’

मनकी ये लंतरानियाँ श्मशानघाटपर भी अपनी रौनक दिखाती हैं। जीवनके परम सत्यको देखकर भी हम उससे आँखें मूँद लेते हैं। प्रेयके चक्करमें पड़कर श्रेयको सर्वथा भुला बैठते हैं।

हमारी भोगासक्ति यहींतक नहीं रुकती। हम ‘मौत’ का नामतक लेना नहीं पसन्द करते। मौतके नामसे डरते हैं !

किसी शवको सड़कपर जाते देख माताएँ अपने

बच्चोंको ढक लेती हैं—कहीं उनपर मृत्युकी छाया न पड़ जाय।

कैसा प्रबल चक्र है मोह और ममताका !

× × ×

पर, चाहे जितनी पेशबन्दी करिये, मौतके नामको भी कानोंमें मत पड़ने दीजिये, पर मौत कभी पीछा छोड़नेवाली है नहीं।

कहते हैं कि लकड़ीका बोझा ढोनेवाला एक बूढ़ा एक दिन थककर बोल पड़ा—‘क्या बताऊँ, मौत भी तो नहीं आती।’ और तभी सचमुच मौत सामने आ खड़ी हुई।

बोली—‘बाबा, क्यों याद किया है मुझे ?’

‘कौन है तू ?’—बूढ़ेने पूछा।

‘मैं हूँ मौत।’

बूढ़ा बेचारा सन्न रह गया।

पर दूसरे ही क्षण बोल उठा—‘मैंने तुझे इसलिये थोड़े ही बुलाया था कि तू मुझे यमराजके घर ले चल। मैंने तो इसलिये बुलाया कि जरा मेरे बोझमें हाथ लगाकर इसे मेरे सिरपर रख दे।’

हम इसी तरहकी बातें करके मौतको बहला देना चाहते हैं, पर वह भला हमारे ऐसे चकमोंमें कभी आनेवाली है ? तभी तो कबीरदास ठोक-ठोककर चेतावनी देते हैं—

जिअरा तुम जैहौ हम जानी।

राज करते राजा जैहें रूप धरंती रानी॥

राज समान सभासद जैहें, जैहें सब अभिमानी॥

बेद पढ़ते पंडित जैहें, कथा सुनंते ध्यानी॥

जोग करते जोगी जैहें, ज्ञान रटंते ज्ञानी॥

चंदा जैहें, सूरज जैहें, जैहें पवन अरु पानी॥

मन औ बुद्धी दोनों जैहें, जैहें सकल परानी॥

जोगी जैहें, जंगम जैहें, जैहें जन धन मानी॥

कहैं ‘कबीर’ हरिजन ना जैहें, जिनकी मति ठहरानी॥

मतलब ?

जाना सबको है। जिसने भी शरीर धारण किया है, उसे जाना है।

इस श्लोकमें मृत्युका सारा रहस्य भरा हुआ है।
अनेक श्लोकोंमें बार-बार कहा गया है कि शरीर

और धन्य तथा पवित्र हो जायगी हमारी मृत्यु!

साधनामें दैन्यभावका महत्त्व

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

साधकोंके लिये एक बहुत उत्तम उपाय है— परमेश्वरके सामने आर्त होकर दीनभावसे हृदय खोलकर रोना। यह साधन एकान्तमें करनेका है। सबके सामने करनेसे लोगोंमें उद्वेग होने और साधनके दम्भरूपमें परिणत हो जानेकी आशंका रहती है। प्रातःकाल, सन्ध्या-समय, रातको, मध्यरात्रिके बाद या उषाकालमें जब सर्वथा एकान्त मिले, तभी आसनपर बैठकर मनमें यह भावना करनी चाहिये कि ‘भगवान् यहाँ मेरे सामने उपस्थित हैं, मेरी प्रत्येक बातको सुन रहे हैं और मुझे देख भी रहे हैं।’ यह बात सिद्धान्तमें भी सर्वथा सत्य है कि भगवान् हर समय हर जगह हमारे सभी कामोंको देखते और हमारी प्रत्येक बातको सुनते हैं। भावना बहुत दृढ़ होनेपर, भगवान्का जो स्वरूप इष्ट हो, वह स्वरूप साकार रूपमें सामने दीखने लगता है एवं प्रेमकी वृद्धि होनेपर तो भगवत्कृपासे भगवान्के साक्षात् दर्शन भी हो सकते हैं। अस्तु!

नियत समय और यथासाध्य नियत स्थानमें प्रतिदिन नित्यकी भाँति किसी आसन या पृथ्वीपर बैठकर भगवान्‌को अपने सामने उपस्थित समझकर दिनभरके पापोंका स्मरणकर उनके सामने अपना सारा दोष रखना चाहिये और महान्‌ पश्चात्ताप करते हुए आर्तभावसे क्षमा तथा फिर पाप न बने, इसके लिये बलकी भिक्षा माँगनी चाहिये। हो सके तो भक्तश्रेष्ठ श्रीसूरदासजीका यह पद गाना चाहिये या इस भावसे अपनी भाषामें सच्चे हृदयसे विनय करनी चाहिये।

मो सम कौन कटिल खल कामी।

तुम सौँ कहा छिपी करुनामय, सब के अंतरजामी ॥
जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोन-हरामी ।
भरि भरि उदर बिषैं कौं धावत, जैसैं सूकर ग्रामी ॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, बिषयिनि सँग बिसरामी ।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि-दिन करत गुलामी ॥
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी ।
सुरदास प्रभु अधम-उधारन, सुनिथै श्रीपति स्वामी ॥

(सूरसागर ४८)

हे दीनबन्धो ! यह पापी आपके चरणोंको छोड़कर

और कहाँ जाय ? आप-सरीखे अनाथनाथके सिवाय जगत्में ऐसा कौन है जो मुझपर दयादृष्टि करे ! प्रभो ! मेरे पापोंका पार नहीं है, जब मैं अपने पापोंकी ओर देखता हूँ, तब तो मुझे बड़ी निराशा होती है, करोड़ों जन्मोंमें भी उद्धारका कोई साधन नहीं दीखता, परंतु जब आपके विरदकी ओर ध्यान जाता है, तब तुरंत ही मनमें ढाढ़स आ जाता है। आपके वे वचन स्मरण होते हैं, जो आपने रणभूमिमें अपने सखा और शरणागत भक्त अर्जुनसे कहे थे—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता ९।३०-३१, १८।६६)

‘अत्यन्त पापी भी अनन्यभावेसे मुझको निरन्तर भजता है तो उसे साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि उसने अबसे आगे केवल भजन करनेका ही भलीभाँति निश्चय कर लिया है। अतएव वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सनातन परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चयपूर्वक सत्य समझ कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। हे भाई ! तू सब धर्मोंको छोड़कर केवल एक मुझ वासुदेव श्रीकृष्णकी शरण हो जा, मैं तुझे सारे पापोंसे छुड़ा दूँगा, तू चिन्ता न कर।’

कितने सबल शब्द हैं। आपके अतिरिक्त इतनी उदारता और कौन दिखा सकता है? **‘ऐसो को उदार जग माहीं’** परंतु प्रभो! अनन्यभावसे भजन करना और एकमात्र आपहीकी शरण होना तो मैं नहीं जानता। मैंने तो अनन्त जन्मोंमें और अबतक अपना जीवन विषयोंकी गुलामीमें ही खोया है, मुझे तो वही प्रिय लगे हैं, मैं आपके भजनकी रीति नहीं समझता। अवश्य ही विषयोंके विषम प्रहारसे अब मेरा जी घबड़ा उठा है, हे नाथ! आप अपने ही विरदको देखकर मुझे अपनी शरणमें रखिये और

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथको, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चरो ।
तात-मात, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो ॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानिये जो भावै ।

(साधन-पथ)

इतने दुष्कर्मोंके बाद तुम्हें मुझे उलाहना देनेका क्या अधिकार है? तुम्हारे कर्म कभी धर्मप्रधान नहीं रहे। जीवनमें हर व्यक्तिको उसका कर्मफल भोगना ही पड़ता है। इन्हीं गलतियोंके कारण तुम्हें इसका दण्ड भोगना पड़ेगा। पुजारीजीकी आँखें अचानक खुल गयीं और स्वप्नमें देखे गये दृश्य मानो यथार्थमें उनकी आँखोंके सामने घमने लगे और पश्चात्तापके कारण उनके नेत्रोंसे अविचल अश्रुधारा बहने लगी।

कृतज्ञता

(श्रीअगरचन्द्रजी नाहटा)

‘तत्त्वार्थसूत्र’का एक वाक्य है—‘परस्परपग्रहो जीवानाम्’ अर्थात् जगत्के जीव एक-दूसरेसे उपकृत होते रहते हैं। संसारका प्रवाह अनादि कालसे चला आ रहा है। अतः पता नहीं, हमारी आत्माने कितने जीवोंको किस-किस तरह एवं कब-कब उपकृत किया है या किन-किन जीवोंसे हम स्वयं उपकृत होते रहे हैं। अनेक जन्मोंकी बात एक बार छोड़ भी दें और केवल इस जन्मपर ही विचार करें तो भी हमें ऐसा प्रतीत होगा कि जन्मसे लेकर अबतक सैकड़ों-हजारों व्यक्तियोंसे हमने सहायता ली है एवं सहयोग प्राप्त किया है। हमारा वर्तमान जीवन बहुत कुछ दूसरोंके सहयोग-सहायता एवं उपकारसे ही गतिमान् है। परंतु हम दूसरोंके उपकारोंको बहुत कम याद रखते हैं। उनके द्वारा हुई बहुत-सी बातोंको हम साधारण-सी मान लेते हैं और दूसरेके उपकारोंकी उपेक्षा कर देते हैं। इसीलिये हमारे प्राचीन महर्षियों एवं विद्वानोंने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि किसीके छोटेसे या थोड़ेसे उपकारको भी हमें सदा स्मरण रखना चाहिये, उसे कभी नहीं भूलना चाहिये। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम हनुमान्-जैसे निस्पृह एकनिष्ठ सेवकके द्वारा की गयी सेवाओंके प्रति अपनेको कृतज्ञ अनुभव करते और कहते हैं—‘हे हनुमान्! तुम्हारे समान मेरा उपकारी देवता, मनुष्य अथवा मुनि—कोई भी शरीरधारी नहीं है। मैं बदलेमें तुम्हारा उपकार तो क्या करूँ, मेरा मन भी तुम्हारे सामने नहीं हो सकता। हे पुत्र! मैंने मनमें खूब विचार करके देख लिया कि मैं तुमसे उद्धरण नहीं हो सकता।’

सुनु कपि तोहि समान उपकारी । नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा । सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउँ करि बिचार मन माहीं ॥

(रा०च०मा० ५। ३२। ३-५)

ऐसे ही अनेक आदर्श हमारे शास्त्रोंमें उपलब्ध होते हैं। दूसरोंके दोषोंको तथा अपने किये हुए उपकारोंको भूल जाना अच्छा है, पर दूसरोंके किये हुए

उपकारोंको सदा स्मरण रखकर उनका कृतज्ञ होना चाहिये। मनुष्यपर प्रभु और प्रकृतिके भी अनन्त उपकार तो हैं ही; अतः हम परमात्माके कृतज्ञ हों, यह सदा-सर्वदा परम आवश्यक है। दूसरेके किये हुए उपकारको भूल जानेवालेको ‘कृतघ्न’की संज्ञा दी जाती है और स्मरण रखनेवालेको ‘कृतज्ञ’ कहा जाता है।

यहाँ कृतज्ञकी महत्ता और कृतघ्नकी निकृष्टता सूचित करनेवाले कुछ श्लोक दिये जाते हैं—

न विस्मरन्ति संतस्तु स्तोकमप्युपकारकम् ।

कर्तुः प्रत्युपकारे ते व्यापृताः स्युर्हृदा सदा ॥

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः

शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम् ।

उदकममृततुल्यं दद्युराजीवितान्तं

न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति ॥

‘साधु पुरुष या संत-महात्मा किसीके थोड़े-से भी उपकारको कभी भूलते नहीं हैं। वे उपकारी पुरुषका प्रत्युपकार करनेके कार्यमें सदा हृदयसे तत्पर रहते हैं। नारियलके छोटे पौधेको मनुष्य जलसे सींचते हैं। अपनी प्रथम अवस्थामें पीये गये उस थोड़े-से जलको याद रखते हुए वे नारियलके वृक्ष अपने सिरपर सदा जलका भार उठाये रखते हैं और जीवनपर्यन्त मनुष्योंको अमृतके तुल्य स्वादिष्ट जल देते रहते हैं। सच है, साधुजन किसीके किये हुए उपकारको कभी भूलते नहीं हैं।’—

कुतः कृतघ्नस्य यशः कुतः स्थानं कुतः सुखम् ।

अश्रद्धेयः कृतघ्नो हि कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥

‘कृतघ्नको कहाँ यश, कहाँ स्थान और कहाँ सुख मिलता है। कृतघ्न मनुष्यपरसे सबका विश्वास उठ जाता है। कृतघ्नके उद्धारके लिये कोई उपाय या प्रायश्चित्त नहीं है।’ तात्पर्य यह कि कृतघ्न होना इतना बड़ा पाप है कि उससे मनुष्यका कभी उद्धार नहीं होता, पर कृतज्ञ पुरुष विरले ही होते हैं। कहा भी है—

विद्वांसः शतशः स्फुरन्ति भुवने सन्त्येव भूमीभृता

वृत्तिं वैनयिकीं च बिभ्रति कति प्रीणन्ति वाग्भिः परे ।

दृश्यन्ते सुकृतक्रियासु कुशला दातापि कोऽपि क्वचित्

कल्पोर्वीरुहवद्वने न सुलभः प्रायः कृतज्ञो जनः ॥

‘संसारमें विद्वान् तो सैकड़ों दृष्टिपथमें स्फुरित होते हैं; राजाओंकी भी कमी नहीं है; विनयशील वृत्तिको भी कितने ही लोग धारण करते हैं; दूसरे ऐसे सज्जन भी हैं, जो अपने वचनोंसे सबको प्रसन्न कर लेते हैं; पुण्यकर्ममें कुशल पुरुष भी दृष्टिगोचर होते हैं और कहीं-कहीं कोई दाता भी मिल ही जाता है; यह सब कुछ है, परंतु जैसे वनमें कल्पवृक्ष सुलभ नहीं है, उसी प्रकार आजकल कृतज्ञ मनुष्य प्रायः दुर्लभ हैं।’

आज तो कृतज्ञताका दुष्काल ही दिखायी देता है। कृतघ्न व्यक्तियोंकी ही अधिकता है। अतः पाठकोंसे कृतज्ञता अपनानेका अनुरोध है; यही हम सबका कर्तव्य भी है। ‘कृतज्ञता’ बहुत बड़ा गुण है। मनुष्यमें ही नहीं, वह पशु-पक्षियोंमें भी पाया जाता है। वे भी उपकारोंका बदला चुकानेके लिये अपने प्राणोंतककी बलि दे देते हैं। जब पशुओंकी ऐसी स्थिति है, तब मनुष्य तो उनकी अपेक्षा विशेष विवेकशील प्राणी है; उसे तो कृतज्ञ होना ही चाहिये; क्योंकि कृतघ्नताको सबसे बड़ा पाप बतलाया गया है।

अनेक अवसरोंपर किया हुआ थोड़ा-सा भी उपकार बहुत बड़ा काम कर जाता है। यदि उस समय कोई सहयोग सहायता देनेवाला न मिले तो भारी हानि उठानी पड़ती है। सम्पूर्ण जीवनके लिये भी खतरा पैदा हो जाता है। ऐसे अवसर बार-बार नहीं आते। इसलिये उपकारीके उपकारको भूल जाना कदापि उचित नहीं है। जहाँतक हो सके, हृदयमें तो उसके प्रति सद्भाव रखें ही; साथ ही प्रकटरूपमें भी और दूसरोंके सामने भी उसका उपकार मानना चाहिये। इतना ही नहीं, यथाशक्ति उस उपकारका बदला चुकानेका भी पूरा प्रयत्न करना चाहिये। पर आज 'कृतज्ञता' का भाव अत्यधिक शिथिल हो गया है। इससे भारतकी प्राचीन संस्कृतिको बहुत धक्का पहुँचा है। आवश्यकता है—पुनः उस आदर्शको जीवनमें अपनानेकी।

सबसे पहला महान् उपकार होता है—माताका,

जिसके द्वारा यह शरीर प्राप्त होता है, बढ़ता है, पुष्ट होता है और कार्यक्षम बनता है। माताको साढ़े नौ महीनेतक गर्भस्थ शिशुको कितने कष्टसे उदरमें रखना पड़ता है, उसके रक्षण और पोषणके लिये कितना सतर्क रहना पड़ता है, यह भुक्तभोगी माता ही जानती है। बच्चेके जन्मके समयकी प्रसववेदना कितने भयंकररूपमें भोगनी पड़ती है। उस विषम अवसरपर कई माताएँ तो अपने प्राणोंकी बलितक भी चढ़ा देती हैं, यह सभी अच्छी तरहसे जानते हैं। जन्मके बाद भी बच्चेके पालन-पोषणमें माताको कितना कष्ट उठाना पड़ता है। रात-रातभर जागना पड़ता है। उसके मल-मूत्रको साफ करनेमें घृणा और देरी नहीं की जा सकती। जननी स्वयं गर्मी-सर्दी सहन करती है, पर बच्चेको तनिक भी गर्मी-सर्दी न लग जाय, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखती है। उसे अपने खाने-पीनेमें भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है, इच्छाओंपर रोक लगानी पड़ती है। शिशु कहीं गिर न जाय, उसे कोई दुःख-दर्द न हो, इसकी भी वह पूरी सावधानी रखती है। ऐसी जन्मदात्री एवं लालन-पोषण करनेवाली माँके उपकारको भी बड़े होनेपर बच्चे भूल जाते हैं, यह सबसे बड़ी कृतघ्नता है। आजकल आधुनिक शिक्षाके प्रवाहमें बहनेवाले युवक तो यहाँतक कह देते हैं कि 'इसमें उपकारकी क्या बात हुई, अपने मोहके कारण ही वह सब काम करती है।'

माँके बाद दूसरा स्थान पिताका है। घरका सारा खर्च दिनभर परिश्रम करके और खोटे-खरे काम करके पिता किसी तरह चलाते हैं। अपने बच्चोंको अच्छा खाना-कपड़ा मिले, वे अच्छी तरह पढ़ाई-लिखाई करके होशियार बनें, इसलिये पिताको अत्यधिक प्रयत्न करना पड़ता है। पर जब बच्चा अपने पैरोंपर खड़ा होनेयोग्य बन जाता है, उसका विवाह हो जाता है, तब वह माता-पिताकी अवहेलना करना प्रारम्भ कर देता है। कुछ लोग तो अपने माता-पिताको मारते-पीटतेतक हैं। उनको समयपर अच्छा खाना नहीं देते, रोगी होनेपर न ठीकसे इलाज करवाते हैं और न सेवाशुश्रूषा करते हैं। माता-पिताने उनको इतने वर्षोंतक पाल-पोषकर योग्य

याद रखो—उपकार या सेवा करनेवालेके प्रति कृतज्ञ होकर मनुष्य जगत्की एक बड़ी सेवा करता है; क्योंकि इससे उपकार करनेवालेके चित्तको सुख पहुँचता है, उसका उत्साह बढ़ जाता है और उसके मनमें उपकार या सेवा करनेकी भावना और भी प्रबल हो उठती है। कृतज्ञके प्रति परमात्माकी प्रसन्नता और कृतघ्नके प्रति कोप होता है। इससे कृतज्ञ बनो और उपकारीके उपकारोंको कभी न भूलो।' ('आनन्दकी लहरें')

यह सुनकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए और महात्माको प्रणाम करके चले गये।

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अनुभव कर लेना चाहिये।

जिस शरीरको हम अपना मानते हैं, क्या उसे

(गीता १५।७)

अपने इच्छानुसार रख सकते हैं ? क्या उसे बामार नहीं होने देंगे ? क्या उसे मरने नहीं देंगे ? क्या उसे कमजोर नहीं होने देंगे ? यदि यह सब अपने वशकी बात नहीं है तो फिर हम शरीरको अपना कैसे मानते हैं ? यदि हम शरीरको अपने इच्छानुसार बदल नहीं सकते तो फिर इसे अपना मानना ही छोड़ देना चाहिये ? जिसपर हमारा आधिपत्य न चल सके, उसे अपना मानना भूल ही है । अपने तो केवल भगवान् ही हैं । हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं । यह शरीर संसारका है और संसार शरीरका है । हम और भगवान् एक जातिके (अविनाशी) हैं और शरीर तथा संसार एक जातिके (विनाशी) हैं । इस प्रकार भगवान्‌को अपना माननेमें कोई परतन्त्र, अयोग्य, निर्बल और अनधिकारी नहीं है ।

भगवान्ने जीवात्माको तो अपना अंश बतलाया है और मनसहित छः इन्द्रियोंको प्रकृतिमें स्थित अर्थात् प्रकृतिका अंश बतलाया है। जीवात्मा अपने अंशी भगवान्में ही स्थित है, परंतु वह अपने आपको प्रकृतिमें स्थित मान लेता है—‘**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि**’ (गीता १३।२०) अर्थात् मन एवं इन्द्रियोंके साथ एकताकर स्वयं सुख-दुःखोंके भोगनेमें हेतु बन जाता है—

पुरुषः सुखदुःखानां भाक्तृत्वं हतुरुच्यते ॥

(गति १३।२०)

यदि जीवात्मा प्रकृतिके साथ अपना सम्बन्ध (जो केवल माना हुआ है) न माने तो उसे महान् आनन्दकी प्राप्ति (जो स्वतः है उस)-का अनुभव हो जाय; क्योंकि महान् आनन्दपर जीवात्माका जन्मसिद्ध अधिकार है। वस्तुतः यह अधिकार जन्मसे भी पहलेका है—अर्थात् सदासे है और सदा रहेगा।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुखरासी ॥

(रा०च०मा० ७।११७।२)

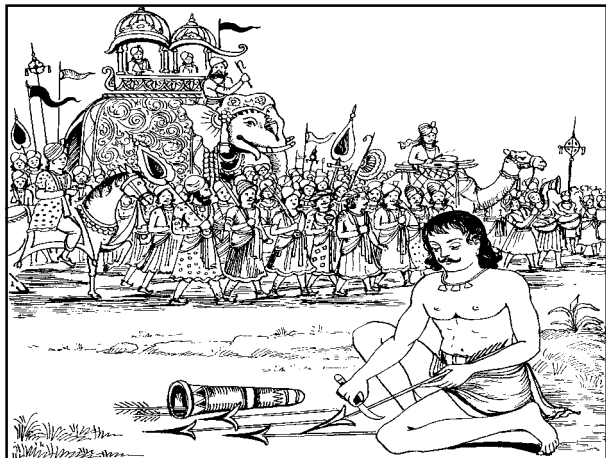
यदि आप कहें कि हमारे पूर्वकृत पाप बहुत हैं तो कोई बात नहीं। आप चाहे जैसे भी हों, पर भगवान्‌को तो अपना मान ही सकते हैं। क्या कुपुत्र माँको अपनी नहीं मानता ? अतएव भगवान्‌को अपना माननेमें प्रत्येक मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र है। भगवान्‌के अतिरिक्त किसी दूसरेको अपना माननेमें आप स्वतन्त्र नहीं हैं। जिसे आप अपनी माँ मानते हैं, वह किसी दूसरेकी बहन भी होगी, बेटी भी होगी और इसी प्रकार उसके पत्नी, चाची आदि कितने ही अन्य सम्बन्ध होंगे, जिनकी आप गिनती भी न कर सकें। इतने सम्बन्धोंके बीच आप उसे अपनी माँ ही मानते हैं। भगवान्‌का भी अनेकोंके साथ सम्बन्ध है, पर वह पूर्णतः स्वकीय सम्बन्ध है। सभी भगवान्‌के अंश हैं और सभीका भगवान्‌के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। संसारके साथ सम्बन्ध तो केवल चिपकाया हुआ है। यह शरीर माँकी कोखसे पैदा हुआ और माँने इसका पालन-पोषण किया, तब वह माँ कही गयी। इस प्रकार यह माँ तो बनी हुई है, परंतु भगवान्‌ सदासे अपने ही हैं। भगवान्‌को हरेक मनुष्य अपना मान सकता है, परंतु

[संत-वाणी]

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❖ अनुकूल आचरणोंसे तथा प्रतिकूल आचरणोंसे—दोनोंसे दत्तात्रेयजीने शिक्षा ली। मधुमक्खी संग्रहसे नष्ट होती है, यह प्रतिकूल आचरणसे शिक्षा ग्रहण है। बाण



बनानेवालेसे एकाग्रताकी शिक्षा अनुकूलाचरणसे है। तात्पर्य यह कि शिक्षाग्राही सर्वत्र शिक्षा लेता है और गुरुभावको भी रखता है। गुरुओंमें पिंगला आदिकी गणना हुई और दत्तभगवान्ने सर्वत्र अपनी श्रद्धा रखी।

❖ गुरु पूर्णिमापर हम लोग सद्गुरुदेवके पूज्य श्रीचरणोंमें बारम्बार नमस्कार करते हैं। यदि स्वयं जगद्गुरु श्रीकृष्ण गुरुरूपसे मार्गदर्शन न करें तो श्रीकृष्णकी ओर कोई जा ही नहीं सकता है। मानव, पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष, वृक्ष, नदी, पंचभूत आदि सारे संसारके सभी स्वरूपोंके द्वारा या उनमें प्रवेश करके अपनी प्राप्तिका उपाय श्रीकृष्ण ही बताते हैं। अनेक प्रकारसे जीवको अपने भक्तको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं, तब कोई नाम-रूपादि साधनोंको अपनाकर प्रभुकी ओर चल सकता है तथा प्रभुको प्राप्त कर सकता है। इसलिये ही प्रभु श्रीकृष्णको जगद्गुरु कहा जाता है। सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिये उपदेश देते हैं, अतः जगद्गुरु हैं।

❖ गुरु अर्थात् भारी, सबसे बड़ा। एक तत्त्व जगत्में श्रीकृष्ण ही हैं। जगत्में सबसे गम्भीर गुरुत्व श्रीकृष्णमें है, अतः वे जगद्गुरु सच्चे हैं। अन्य जगत् मायिक है, उसमें लघुत्व है गुरुत्व नहीं है। भक्तकी दृष्टिमें ईश्वरसे

प्रकट जगत् ईश्वररूप है, अतः सारा जगत् गुरु है, श्रीकृष्ण है। सारा जगत् श्रीकृष्णकी सत्ता-महत्ताका, तत्त्वका, प्राप्तिका उपदेश देता है, अतः जगद्गुरु है जगत् श्रीकृष्णसे भिन्न नहीं है।

❖ श्रीविवेकानन्दजीका नाम नरेन्द्र था, पूरे नास्तिक थे। वे कहते थे कि पत्थरकी जड़ मूर्तियोंमें चैतन्य आत्माको लगानेसे क्या लाभ? श्रीरामकृष्णदेव परमहंसको पागल समझते थे। किसी दिन मनमें आया कि देखें उस पागलको। जब परमहंसजीके पास आये तो उन्होंने कहा—क्यों नरेन्द्र! तुम इतनी देरसे आये? नरेन्द्रके मनमें आया कि इन्हें मेरे नामका पता कैसे चला? इन्होंने कहा कि पत्थरकी मूर्तिके सामने माँ-माँ-माँ करनेसे क्या लाभ? परमहंसजीने कहा—बेटा! ये साक्षात् माता हैं। प्यार करती हैं, बातचीत करती हैं। कृपा करके परमहंसने कहा—तुम माताजीके सामने बैठो, ध्यान लगाकर माँ-माँ पुकारो। नरेन्द्रने ऐसा ही किया। परमहंसजीने माताजीसे कहा कि इस बालकपर दया करो। परमहंसकी प्रार्थनापर माताने ध्यानमें दर्शन दिया, सिरपर हाथ रखा। उसी क्षण नरेन्द्रके मनमें विवेककी जागृति हो गयी और गुरुचरणरजके सिरपर लगाते ही विवेकानन्द हो गये। हाय! हाय कर पछताने लगे कि गुरुचरणोंसे अलग रहकर इतना समय व्यर्थ गया।

❖ सेवा के लिये भगवान्की प्रतिमा है, पर प्रत्यक्ष सेवाके लिये अपने गुरुजन, पिता-माता हैं। वृद्धकी सेवा, गायकी सेवासे कृष्णभक्ति मिलती है। यदि पिता-माता, संत, विप्र, वृद्ध, गाय आदिको कोई प्रसन्न कर ले तो समझो कि भगवान्को प्रसन्न कर लिया।

❖ कलियुगमें श्रद्धा-भक्ति सुरक्षित रहे तो समझो प्रभुकी बड़ी कृपा है। हितकारी उपदेश देनेवाले सभी गुरु हैं। एक गुरुजन मूक उपदेश देते हैं, उनके सदाचारसे शिक्षा मिलती है। वे बोलते नहीं हैं। नदी, वृक्ष, संत आदि मूक उपदेष्टा हैं। दत्तभगवान्ने सर्वत्र शिक्षा प्राप्त की थी।

[परमार्थके पत्र-पुष्पसे साभार]

कहानी—

सात दिनका मेहमान

(पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार')

(१)

—विचार करते-करते नागदत्त सेठ घर पहुँचे।

उज्जयिनीमें नागदत्त सेठका नाम देशविख्यात था। नामके साथ दाम एवं व्यापारका काम भी दिनोंदिन बढ़ रहा था। श्रीमानताके तीन चरण—नाम, दाम एवं कामकी वृद्धि होनेपर भी चौथे चरण धामकी कमी उन्हें बेचैन बना रही थी। वैसे तो उनके रहनेका मकान बहुत अच्छा था, पर उसे महल नहीं कहा जा सकता था। अभी—अभी नगरपतिने एक सुन्दर महालय बनवाया था। नागदत्त सेठ उनसे किस बातमें कम थे, जो एक विशाल महल न बनायें?

इस कार्यके लिये उन्होंने जयपुरके ख्यातनामा शिल्पियोंको बुलवाकर अच्छे-से-अच्छा महल बनवाया। अब केवल उसमें रंगका काम ही बाकी था। चित्रकामके लिये भी देशके कुशल चित्रकार बुलाये गये थे। रंग-रौगन एवं चित्रकारीका काम चल रहा था।

प्रातःकालका समय था। स्वयं नागदत्त चित्रकारोंको सूचना दे रहे थे—‘चित्रकार! देखना, ऐसी बढ़िया चित्रकलाका काम करना। चाहे जितना धन लग जाय, इसकी चिन्ता नहीं है; किंतु सात पीढ़ियोंतक रंग तथा चित्र ताजे बने रहें, ऐसा काम करना है……’। नागदत्त आगे बोल ही रहे थे कि उसी मार्गसे मन्द-मन्द हँसते हुए एक मुनिराज निकले तथा उनको देखकर नागदत्तने अपनी बात पूरी किये बिना ही मुनिराजका वन्दन किया।

मुनिराज अपने हाथसे आशीर्वाद देते हुए नागदत्तकी ओर देखकर मुसकराने लगे। मुनिराज अपूर्व ज्ञानी थे। भिक्षा लेनेके लिये ही वे बाहर निकलते थे, अन्यथा एक ही एकान्त स्थानमें बैठकर जप-ध्यानमें मग्न रहते थे। ऐसे पहुँचे हुए मुनि आशीर्वाद देते-देते हँसे क्यों? नागदत्तको इस बातपर आश्चर्य हुआ। मुनिके जानेके बाद सेठ अपने घर आये। मार्गमें चलते-चलते भी नागदत्तके मनमें यही विचार आ रहा था कि ऐसे प्रौढ़ मुनि मुझे देखकर हैसने क्यों लगे? महलके निर्माणमें कोई त्रुटि रह गयी होगी या चित्रकलामें कोई कसर होगी?

(२)

भोजन परोसती हुई नागदत्तकी पत्नी कह रही थी—‘मजदूर लोग काम करते हैं, महल भी अब प्रायः पूरा बन चुका है, फिर भी आप वहीं खड़े रहकर इतना समय क्यों बिगाड़ते हैं ? आपको अपने स्वास्थ्यकी भी चिन्ता नहीं। भोजनका समय बीत जानेपर भी आपको स्मरण नहीं रहता। आपकी उपस्थितिसे ही काम चलता हो, ऐसा तो है नहीं।’

‘तुम चिन्ता न करो’—भोजन करते-करते नागदत्तने उत्तर दिया। ‘अब तो नाव किनारे लग चुकी है, सिर्फ रंग-रौगन और कुछ कलात्मक चित्रोंका काम ही बाकी है। तुम नहीं जानती कि आजके मजदूर लोग देख-रेखके बिना पूरा काम नहीं करते हैं।’

सुनकर पत्नी मौन रह गयी। थोड़ी देरके बाद नागदत्तने भोजन करते-करते कहा—‘सातवीं मंजिलपर कलात्मक चन्दनका झूला बन चुका है। सोनेके कड़े भी तैयार हैं। उसी प्रकार हमारे प्यारे मुन्नेके लिये एक पलना बनानेका भी आर्डर दे दिया है। वह भी सोने-चाँदीका नक्काशीदार बनेगा।’

‘मैं भी गृह-प्रवेश मुहूर्तकी घड़ियाँ गिन रही हूँ।’
सेठकी पत्नीने कहा। ‘रसोई तो अच्छी बनी है न?’

‘मैं तो दुविधामें पड़ गया हूँ’—भोजन करते-करते नागदत्त बोले। ‘ये पूड़ियाँ, कचौरी, पकौड़ियाँ, यह स्वादिष्ट श्रीखण्ड—इनकी प्रशंसा प्रथम करूँ या गुलाबके फूल—जैसे अपने मुन्नेकी?’

‘आप भोजन कर रहे हैं और यह तो देख रहा है’
मुन्नेको सेठकी गोदमें देती हुई पत्नी बोली। ‘इसे भी दो
ग्रास खिला दीजिये न?’

सेठने दो वर्षके मुन्नेको अपनी गोदमें बैठाया और खीर-पूड़ी का एक छोटा-सा ग्रास उस नन्हे मुन्नेको खिलाना आरम्भ किया। संयोगवश उसी समय बच्चेने लघुशंका कर दी? थोड़े छींटे भोजनकी थालीमें भी पड़ गये।

सायंकालका समय था। उज्जयिनीके देवालयोंके घण्टारवोंसे समस्त आकाशमण्डल गूँज उठा। ठीक इसी समय नागदत्तने आकर मुनिराजके चरणोंमें वन्दन किया।

नदी-किनारे सुरम्य वातावरणमें नागदत्तने प्रश्न किया—

महात्मन्! मैं चित्रकारको सूचना दे रहा था, ठीक उसी समय आपने हास्य क्यों किया था?’

‘हाँ,’ मुनिराज बोले। ‘चित्रकारको आप किन शब्दोंमें सूचना दे रहे थे? याद है आपको?’

‘जी हाँ’ नागदत्त बोले। ‘मैं चित्रकारसे कह रहा था कि ऐसा चित्रकलाका काम करो जो सात पीढ़ीतक अमिट रह सके।’

‘सुनो नागदत्त!’ मुनिराज बोले—‘सात पीढ़ीपर्यन्त रंग तथा चित्रकारीको अमिट रखनेकी इच्छा करनेवालेको यह पता नहीं है कि वह स्वयं केवल सात दिनका मेहमान है।’

इस स्पष्ट कथनसे नागदत्तके सारे अंग ढीले पड़ गये! उनका स्वर बेसुरा बन गया। आँखें छलक उठीं! कम्पित स्वरसे उन्होंने पूछा—‘आप क्या सच कह रहे हैं? यदि ऐसी ही भावी हो, तो कृपया यह भी बतलाइये कि मेरी मृत्यु किस रोगसे होनेवाली है?’

‘तो सुनो’ महात्माजी बोले। ‘यह पञ्चमहाभूतके संघातरूप देह तो नश्वर है। इसका जन्म और मरण किसीके वशकी बात नहीं है, यह कर्माधीन है—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः।

देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः॥

ऐसे कर्माधीन देहको नित्य मानकर मिट्टी, पत्थर और चूनेसे बने हुए मकानका रंग सात पीढ़ीतक बने रहनेकी आशा रखनेवालेके लिये कोई हँसे नहीं तो क्या करे? आपकी मृत्यु भी कर्माधीन होकर आजसे सातवें दिन मस्तकशूलके रोगद्वारा होगी।’

‘तो भगवन्!’ नागदत्तने प्रश्न किया। ‘दूसरी बार भिक्षा लेते समय भी आपने मन्द हास्य किया, उसका कारण भी मैं सुनना चाहता हूँ।’

‘यह बात कहने-सुननेलायक नहीं थी।’ महात्मा बोले—‘किंतु तुम्हारे आग्रहसे और तुम्हारे ही कल्याणके लिये कहना उचित समझता हूँ। देखो, जिस बालकको तुम प्यारा मुन्ना मानकर गले लगाते हो और आज जिसके मूत्रके छींटे लग जानेपर भी तुम उस भोजनको प्रेमसे खा लेते हो, वही तुम्हारा प्यारा पुत्र पूर्वजन्ममें तुम्हारी पत्नीका

जार-पति था, जिसका अपनी पत्नीके साथ एकान्तमें देखकर तुमने घात किया था। मृत्युके बाद वही जीवात्मा तुम्हारी पत्नीके उदरसे जन्म पाकर तुम्हारा अनिष्ट करनेको आया है। तुम्हारी मृत्युके बाद वह महादुराचारी एवं दुर्व्यसनी बनकर तुम्हारे उस महल, तुम्हारी दूकान एवं प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिला देगा। जिस महलका रंग तुम सात पीढ़ीतक कायम रखना चाहते हो, तुम्हारा यही पुत्र तुम्हारी सात पीढ़ीकी सारी प्रतिष्ठाको डुबो देगा। बस, इसी विचारसे दूसरी बार मुझे हँसी आ गयी थी।’

‘महाराज!’ नागदत्तके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह रही थी। वे बोले—‘मैं चारों ओरसे लुटा जा रहा हूँ। अब मुझे कृपया यह भी बतलाइये कि दूकानके समीपसे निकलते समय आपने तीसरी बार हास्य क्यों किया था?’

‘हाँ, यह भी सुन लो!’ मुनिराज बोले। ‘जिस बकरेको तुमने पाँच मुद्राके लोभसे कसाईके हाथों सौंप दिया, वह तुम्हारे मृत पिताजी थे और वह कसाई पूर्वजन्ममें एक गरीब किसान था। उसके मालके कम पैसे देकर तुम्हारे पिताजीने उसका अपराध किया था। अतः उस पूर्वजन्मका ऋण चुकानेके लिये उसी किसानके हाथसे उसे मरना पड़ा!

‘देखो भाई!’ थोड़ा रुककर महात्माजी बोले—‘यह संसार तो ऋणानुबन्धनसे ही बनता है, मोहान्ध मानव अपने ही दोषसे इस जंजाल-जालमें फँस जाता है। यह कालदेवकी माया है—

संसारः सिन्धुरूपश्च मीनरूपाश्च मानवाः।

जञ्जालो जालरूपश्च कालरूपश्च धीवरः॥

अर्थात् ‘इस अपार संसार-सागरमें मानव-प्राणी मत्स्यके समान है। वही मानवरूप मत्स्य अपने देहाभिमानद्वारा की हुई चतुराई—अहंता-ममतारूप जालको बनाता है और फिर उसी जंजालरूप जालमें कालरूप धीवर उसे पकड़ लेता है।’

नागदत्तको अब सच्ची बात समझमें आ गयी। उन्होंने अपनी सम्पत्तिका दो तृतीयांश भाग धर्मकार्योंमें लगानेका निश्चय कर लिया और अन्ततक स्मरण, सत्संग आदि करते हुए वे सातवें दिन मृत्युके वश हो गये।

(प्राचीन जैनकथाओंके आधारपर लिखित)

आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन

(पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)

ज्ञाननिधि आद्य श्रीशंकराचार्य भगवान् शंकरके अवतार थे। उन्होंने समग्र सनातन-धर्म एवं शास्त्रोंका उद्धार किया, विशेषतः वेदके ज्ञानकाण्डका। उनका अपना कोई सिद्धान्त या मत न था। वे अद्वैतवादके प्रवक्तामात्र थे। वस्तुतः 'शंकर-सिद्धान्त', 'सनातन-वैदिक-सिद्धान्त' है। उसका लक्ष्य अखण्ड, अनन्त, त्रिकालाबाधित, परमानन्दस्वरूप, मोक्षप्राप्ति या मोक्षस्वरूप परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति है। परमात्मासे अभिन्नता प्राप्त करना ही मोक्ष है। परब्रह्म परमात्मा निराकार, निर्विकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप है और वही समस्त प्राणिमात्रका आत्मा है। समस्त प्राणी अज्ञानवश अपने स्वरूपको नहीं जानते। ज्ञानद्वारा अज्ञान-निवारण होनेपर हाथमें रखे पदार्थके समान अभिन्न आत्मस्वरूपका दर्शन होने लगता है।

किसी भी पदार्थका ज्ञान प्रमाणके अधीन है। जैसे लाल-पीला-हरा, वृक्ष, नद-नदी, स्त्री-पुरुष आदिके रूपका ज्ञान नेत्रके अधीन है। रूप-ज्ञानमें नेत्र ही प्रमाण है। वैसे ही प्रकृति तथा प्राकृतिक पदार्थसे परे ब्रह्मात्मज्ञानके लिये वेद ही प्रमाण है। किसी भी तर्क या विज्ञानद्वारा उसका ज्ञान सम्भव नहीं; क्योंकि तर्क या विज्ञानकी सीमा प्रकृतिपर्यन्त है। इसी कारण शास्त्रोंमें कहा है—

अतीन्द्रियार्थे धर्मादौ शिवे परमकारणे।

श्रुतिरेव सदा मानं स्मृतिस्तदनुसारिणी॥

(सूतसंहिता ८।१९)

'अतीन्द्रिय पदार्थ, धर्माधर्म तथा परकारण शिवमें सदैव श्रुति ही प्रमाण है, श्रुतिका अनुसरण करनेवाली स्मृति भी प्रमाण है।' इसी कारण आस्तिकजन वेद तथा वेदानुकूल शास्त्र-प्रमाण मानते हैं। आद्य श्रीशंकराचार्यने जो भी कहा, वह श्रुति-प्रमाणानुसार ही कहा। अद्वैत ज्ञानतत्त्वका प्रतिपादन मुख्यतः वेदके अन्तिम भाग 'उपनिषद्' में हुआ है। जैसे शरीरमें ज्ञानका मुख्यतः केन्द्र सिर है, वैसे ही उपनिषद् वेदके शीर्षस्थानीय हैं। केन्द्रसे ही शाखा-प्रशाखाओंका संचालन तथा संजीवन होता है। यदि उपनिषद् वेदसे पृथक् कर दिये जायँ तो शेष भाग ज्ञानशून्य शेष रह

जाय। जगत्-जीव, ईश्वरादि और इनके सम्बन्धोंका विवेचन उपनिषदोंमें ही प्राप्त होता है। वेदव्यासप्रणीत 'ब्रह्मसूत्र' उपनिषदोंकी ही व्याख्या है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' आदि सभी ग्रन्थ उपनिषदोंपर ही आधृत हैं। आचार्य श्रीशंकरने इन सभी ग्रन्थोंपर भाष्य लिखे।

परम तत्त्व एक ही है। उसीमें अनेकताकी भ्रान्ति हो रही है। भ्रान्तिका कारण है—परमतत्त्वका अज्ञान। ज्ञानद्वारा अज्ञान-निवारण होनेपर अनेकताकी भ्रान्ति निवृत्त हो जाती है। उस स्थितिमें आकाशवत् अखण्ड, एक परम तत्त्वानुभूति होती है। तब मानव राग-द्वेष, मानापमान, जन्म-मृत्यु, लाभालाभ, बन्ध-मोक्षादि द्वन्द्वोंसे ऊपर हो जाता है। आचार्य श्रीशंकर इसी स्थितिमें थे। उनका न कोई अपना था न पराया, न उनमें राग था न द्वेष, न नीचकी कल्पना थी न उच्चकी; पूर्ण साम्यावस्था थी उनमें, उनके हृदयमें करुणा-स्रोत प्रवाहित होता था। इसी कारण वे वेदानुकूल सदुपदेशमें प्रवृत्त रहे। उस समय वेद-विरुद्ध अनेक विद्वानोंद्वारा अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हो रहे थे। उनकी यह दशा देखकर आचार्यने सत्पथका उपदेश किया और वेदविरुद्ध मत-मतान्तरोंकी निःसारता दिखलायी। कुछ विद्वान् कह सकते हैं—'उन्हें उपदेशमात्र करना चाहिये था, किसी अन्यका खण्डन नहीं करना चाहिये था। खण्डन करनेसे ज्ञात होता है कि उनमें भी राग-द्वेष था।' किंतु ऐसा कथन ठीक नहीं है। स्वयं आचार्यने यही प्रश्न उपस्थितकर इसका समाधान किया है। 'ब्रह्मसूत्र' (अ० २ पा० २ सू० १ प्र०)—के भाष्यमें उनका कथन है—

'ननु मुमुक्षूणां मोक्षसाधनत्वेन सम्यग्दर्शननिरूपणाय स्वपक्षस्थापनमेव केवलं कर्तुं युक्तम्, किं परपक्षनिराकरणेन परविद्वेषकारणेन। बाढमेवम्, तथापि महाजनपरिगृहीतानि महान्ति सांख्यादितन्त्राणि सम्यग्दर्शनापदेशेन प्रवृत्तान्युपलभ्य भवेत् केषाचिन्मदमन्तीनामेतान्यपि सम्यग्दर्शनायोपादेया-नीत्यपेक्षा। तथा युक्तिगाढत्वसम्भवेन सर्वज्ञभाषितत्वाच्च श्रद्धा च तेषु इत्यतस्तदसारतोपपादनाय प्रयत्यते।'

आचार्यने कहा—‘मैं तुम्हारे वचनोंमें दोष नहीं

आचार्य वेदोक्त कर्म, उपासना तथा ज्ञानका प्रतिपादन करते थे। किंतु मोक्ष एकमात्र ज्ञानसे ही होता है और यही वेदका परम तात्पर्य है—ऐसी उनकी मान्यता थी और यह

आचार्य शंकरने मुमुक्षु मनुष्योंके लिये ज्ञानका प्रतिपादन किया। किंतु जिनमें मुमुक्षुता नहीं है, उनके लिये शास्त्रोंने कर्मोपासना निर्दिष्ट की है। ईश्वरार्थ या निष्कामकर्म करनेसे जन्म-जन्मान्तर, कल्प-कल्पान्तरके वैषयिक राग-द्वेषात्मक संस्कारोंका प्रक्षालन होता है। अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। तब उसमें मोक्षकी इच्छा उत्पन्न होती है। ईश्वरोपासनासे अन्तःकरणकी चंचलताकी निवृत्ति होती है। तब प्रत्यगभिन्न ब्रह्ममें बुद्धिकी स्थिरता होती है। इस प्रकार मुमुक्षुता उत्पन्न करनेके लिये कर्मोपासना अवश्यकर्तव्य है। पश्चात् ज्ञानोपदेशसे ब्रह्मस्वरूपा मुक्ति प्राप्ति होती है। ‘चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये’ (विवे०चू०११) ‘कर्म चित्तकी शुद्धिके लिये है, मोक्षके लिये नहीं, आदि आचार्यके वाक्य हैं। इस प्रकार आचार्यने वेदोक्त कर्म-उपासना तथा ज्ञानका समन्वय किया है। शास्त्रार्थ-प्रकाशनद्वारा मानवको सर्वोच्च स्थिति ब्रह्मस्वरूपतक

प्राणियोंका वही आत्मा है।' आत्मस्वरूप ब्रह्मज्ञान होनेपर इसी जीवनमें ब्रह्मानुभूति होती है। मैं त्रिकालाबाधित सत् हूँ, सबका स्वरूप होनेसे चित् हूँ, आकाशवत् असीम होनेसे अनन्त हूँ और दुःखलेशशून्य होनेसे आनन्दस्वरूप हूँ। मेरा न कभी जन्म है, न मरण। मैं नित्य, निर्विकार, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वरूप हूँ', आदि स्वाभाविक अनुभूति होती है', इसी प्रकार हम आद्य श्रीशंकराचार्यके सदुपदेशानुसार अपने जीवनका निर्माण करें, इसीमें हमारा परम कल्याण है और यही वस्तुतः आचार्यके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि है।

भगवान् प्रसन्न हो उठे। ईश्वरमें भेदबुद्धि नष्ट करना ही उनका लक्ष्य था। उसके सिद्ध हो जानेपर भक्तकी अनन्यताके वशीभूत हो उन्होंने उसकी प्रसन्नताके लिये अपने सिरपर शिवलिंग धारण कर लिया। तबसे पंढरपुरके विट्ठलभगवान्के सिरपर आज भी शिवलिंग विराजमान है।

श्याम न आये ॥ फिर० ॥

(श्रीहरी मोहनजी)

ब्रह्मनिष्ठ संत स्वामी श्रीशरणानन्दजीके साधना-कालमें उनके सद्गुरुने उनसे कहा था कि 'ठहरी हुई बुद्धिमें श्रुतियोंका ज्ञान स्वतः प्रकट होता है।' स्वामीजीके जीवनका एक प्रसंग है—पटनामें नेशनल साइंस कांग्रेसका अधिवेशन हो रहा था। स्वामीजीके प्रेमियोंने उन्हें भी आमन्त्रित किया। फिर कहा गया कि वह अधिवेशनको सम्बोधित करेंगे। जब वह मंचपर पहुँचे तो अधिवेशनमें भाग लेनेवालोंमेंसे किसीने कहा कि आप परमाणु-विज्ञानपर कुछ बताइये। प्रश्नकर्ताने चाहे जिस भी भावसे पूछा हो, परंतु स्वामीजी आधा घण्टातक विशेषज्ञकी भाँति परमाणु-विज्ञानपर बोलते रहे। जब वह चलने लगे तो एक भक्तने पूछा कि आप तो केवल कक्षा चार या पाँचतक पढ़े थे, आपने यह सब कैसे बोला? इसपर

संत-चरित—

श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ)

(श्री 'मातृशरण')

सत्रहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें दक्षिणदेशमें एक अद्भुत सिद्धात्मा हो गये हैं, जिन्होंने उस समय लुप्तप्राय वैदिक प्रकाश और हिन्दुत्वका पुनरुद्धारकर राष्ट्रके नव निर्माणमें भारी सहायता दी। दक्षिणदेश विद्वत्ता और साधनाके लिये प्रसिद्ध है। गम्भीरराय नामक एक विद्वान् भक्त उन दिनों दूर-दूरतक प्रसिद्ध थे। विजयनगर राज्यके एक राजाने महाभारतके पाण्डित्यपूर्ण प्रवचनसे प्रसन्न होकर इनको 'भारती' की उपाधिसे विभूषित किया था। इनकी विदुषी और धर्मात्मा एवं पतिव्रता पत्नीसे अद्भुतकर्म भास्कररायका शुभजन्म भागामें उच्च ब्राह्मणकुलमें हुआ। योग्य माता-पिताकी सुयोग्य सन्तान। बचपनसे ही भास्करराय अद्भुत प्रतिभाका परिचय देने लगे। पाँच वर्षकी अवस्थामें इनका उपनयन-संस्कार काशीमें किया गया और अपने वेदारम्भगुरु 'श्रीनरसिंहाध्वरि'से इन्होंने बहुत ही कम समय और अवस्थामें १८ विद्याएँ पढ़कर लोगोंको चकित कर दिया। जन्मसे ही धर्म और ईश्वरके अभिमुख होने और फिर अपने पिताद्वारा सरस्वतीपूजामें दीक्षित होनेके कारण श्रीभास्करराय दिनों-दिन भजनभावमें अधिकाधिक समय देकर मस्त रहने लगे। बालक कहीं संन्यासी न हो जाय, इस डरसे माता-पिताने शीघ्र ही इनके विवाहकी ठानी और 'आनन्दी' नामक विदुषी एवं सद्गुणविशिष्टा कन्यासे विवाह कर दिया, जिसके गर्भसे पाण्डुरंग नामक एक चमत्कारी पुत्रका जन्म हुआ। श्रीभास्कररायका प्रतिभाशाली मस्तिष्क नरसिंहाध्वरिसे प्राप्त १८ विद्याओंसे सीमित होनेवाला न था। ये आगे बढ़े और श्रीगंगाधर वाजपेयीसे इन्होंने तर्कशास्त्रपर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया, जिसके बलपर इन्हें बड़े-बड़े विद्वानोंपर अद्वितीय विजय हाथ लगी। ये सब विषय इनके भक्तिप्रधान हृदयको नीरस मस्तिष्कके निरर्थक खेल जान पड़े और इसके परिणामस्वरूप श्रीशिवदत्तजी श्कलद्वारा यह पूर्णाभिषेककी तान्त्रिक

दीक्षामें दीक्षित हुए और श्रीविद्या भगवती महात्रिपुरसुन्दरीका रसाप्लुत अनुग्रह प्राप्तकर निज पत्नीको भी अपने ही हाथों श्रीविद्यामें दीक्षित कर दिया। ‘आनन्दी’ अब ‘पद्मावत्यम्बिका’ हो गयी, पत्नी नहीं साक्षात् जगन्माता ! श्रीनृसिंहानन्दनाथने फिर इनको भासुरानन्दनाथ नामसे परमा दीक्षामें दीक्षित किया।

सब साधनाओंमें सबसे अधिक कठिन श्रीविद्या महात्रिपुरसुन्दरी और उनके स्वरूप 'श्रीचक्र'की साधनामें पूर्ण सिद्ध होनेपर दिव्यालोकसे अधिकारियोंको उपकृत करने और जो भूले-भटके और विकर्मग्रस्त हो गये थे, उनको जगाने और सत्पथपर लानेके लिये इन्होंने कई लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं और मार्गमें अनेक प्रसिद्ध महात्माओं और धर्माचार्योंको शास्त्रार्थमें हराया। यह किसीके सिरपर अपने सत्प्रकाश और सिद्धान्तोंको जबरदस्ती लादते न थे बल्कि नम्रता और विनयशीलताके साथ निज अनुभूतियोंको जनताके सामने रख देते थे, कट्टरपन्थियोंके विरोधको अपने मधुर भाषणसे सप्रेम जीत लेते थे। इस प्रकार गुजरात प्रदेशमें वल्लभ-सम्प्रदायाचार्य और माध्वसम्प्रदायके कई पूजित नेताओंको हराकर काशीमें आकर इन्होंने सोमयाग किया, जिसके अद्भुत प्रभावसे बहुत-से अधिकारीलोग उपकृत होकर इनके सत्प्रकाशमें दीक्षित हो गये। ये जहाँ भी जाते थे, श्रीदेवीभागवत, रामायणके अद्भुत काण्ड और अथर्ववेदका रहस्य खोलते जाते थे, क्योंकि अथर्ववेदके गुप्त रहस्योंको लोग भूल-भाल रहे थे और मनमाने ढंगसे तामसाचारमें प्रवृत्त हो रहे थे। मानवजातिके वास्तविक कल्याणके लिये श्रीभास्करराय अथर्ववेदको अन्तिम और पूर्ण प्रकाश मानते थे। इन्होंने अथर्ववेदपर एक रहस्यटीका लिखी थी और इन्हींके सत्प्रयत्नोंसे अथर्ववेदके गूढ़ रहस्य फिर जनताके सामने खुल पाये। आवश्यक स्थानोंपर भ्रमण करके अन्तमें ये चोलप्रदेशमें अपने तर्कगुरु

श्रीभास्कररायकी दिव्य दृष्टिमें भविष्यकाल कुछ दूरका समय न था, होनेवाली घटनाओंको वे बहुत पहले ही अपने अन्तर्ज्ञानमें उतार लेते थे। अपने आगे आनेवाले किसी संन्यासी आदि पूज्य व्यक्तिकी बाबत पहलेसे ही जानकर यह अन्दर आँगनमें इस प्रयोजनसे चले जाते थे कि षोढाष्टासके कारण आदरणीय व्यक्तिको नमस्कार

काफी आयुका भोग लेकर बड़ी उमरमें उक्त महापुरुषने स्वेच्छासे मध्यार्जुनक्षेत्र (वर्तमान—तिरुवितैमरतूर) —में भौतिक देह त्यागकर नित्यधाममें आरोहण किया। आरोहण करनेसे पहले देशके विभिन्न स्थानोंपर अनेक मन्दिरों, पाठशालाओं तथा चक्रपूजास्थलोंका जीर्णोद्धार एवं नवनिर्माण किया, जिससे हिन्दूधर्म फिरसे हरा-भरा हो गया। इस कार्यमें इनकी सहधर्मिणीका अपूर्व सहयोग रहा।

श्रीभास्कररायके शिष्य तो अनेक थे, किंतु प्रमुख अनन्य भक्त थे श्रीउमानन्दनाथ। इन्होंने अपने गुरुदेवकी

संतोंका चरित्र कपासके चरित्र (जीवन)–के समान शुभ है, जिसका फल नीरस, विशद और गुणमय होता है। (कपासकी डोडी नीरस होती है, संत-चरित्रमें भी विषयासक्ति नहीं है, इससे वह भी नीरस है; कपास उज्ज्वल होता है, संतका हृदय भी अज्ञान और पापरूपी अन्धकारसे रहित होता है, इसलिये वह विशद है, और कपासमें गुण (तन्तु) होते हैं, इसी प्रकार संतका चरित्र भी सद्गुणोंका भण्डार होता है, इसलिये वह गुणमय है।) [जैसे कपासका धागा सूईके किये हुए छेदको अपना तन देकर ढक देता है, अथवा कपास जैसे लोढ़े जाने, काते जाने और बुने जानेका कष्ट सहकर भी वस्त्रके रूपमें परिणत होकर दूसरोंके गोपनीय स्थानोंको ढकता है, उसी प्रकार] संत स्वयं दुःख सहकर दूसरोंके छिद्रों (दोषों)–को ढकते हैं, जिसके कारण उन्होंने जगत्में वन्दनीय यश प्राप्त किया है। संतोंका समाज आनन्द और कल्याणमय है, जो जगत्में चलता-फिरता तीर्थराज (प्रयाग) है। जहाँ (उस संतसमाजरूपी प्रयागराजमें) रामभक्तिरूपी गंगाजीकी धारा है और ब्रह्मविचारका प्रचार सरस्वतीजी हैं। [श्रीरामचरितमानस]

मैंने कहा मैं महादेव उपाध्याय हूँ। भवानीपुरासे आ रहा हूँ। मैं आपके यहाँ...। मेरा वाक्य पूरा नहीं हो पाया कि वे तपाकसे बोले—यह कोई होटल या धर्मशाला नहीं है, समझे। आप कहाँसे आ रहे हैं, कौन हैं, मुझे इससे क्या मतलब? नगर भवनमें चले जाइये या किसी होटलमें। यहाँ कोई जगह नहीं है। जाइये, आप जाइये। मैंने कहा रातमें कहाँ जाऊँ? रात हो गयी है। प्राचार्यजीने कहा—हाँ—हाँ, रात हो गयी है, तो मैं क्या करूँ? क्या रात मैंने कर दी? आप जाइये। मैंने पूछा नगर भवन किधर है, उन्होंने अपने चपरासीसे कहा, इनको नगर भवनका रास्ता बता दो, जाओ। वह क्वार्टरकी चार दीवारीसे निकला और थोड़ी दूर जाकर बोला—सीधे चले जाओ, फिर दाहिनी ओर मुड़ना, फिर बायीं ओर मुड़कर सीधे चले जाना। आगे किसीसे पछ

डाल दीजिये, बूरा डाल दीजिये। लौकीमें पानी तो होता ही है। तनिक देरमें बन जायगा। फिर उसने आगमें दबी आलू, अरबी और शकरकन्दी निकाली। उन्हें छीलकर बोला—इन्हें कुछ गुड़के साथ खायें कुछको कड़ाहीमें डालकर घीमें तलकर नमकीन बनाकर खायें। देखिये, लौकीका हलवा बन चुका है। इसी कड़ाहीमें घीमें तल लें। गायका घी है महाराज! तबतक मैं छानकर थोड़ा-सा आटा लाता हूँ। उससे गोबरकी कण्डीपर अंगा बाटी बना लें। मैं उसके बोलनेकी तत्परता और कामकी व्यवस्थाकी व्यस्ततामें कुछ बोल ही नहीं पा रहा था। प्रेमभरा आग्रह टाल नहीं पा रहा था। थोड़ी ही देरमें सब व्यंजन तैयार हो गये। मैंने मन-ही-मन भगवान्को समर्पितकर खाना शुरू किया। अहा! कैसा स्वादिष्ट भोजन है। मैंने खूब डटकर खाया, फिर भी बचा रहा। तब उसने भी प्रसाद मानकर खाया। बड़ा सुख मिला। थोड़ी देरमें वह कम्बल लाया। उसे बिछा दिया और हँसकर बोला—ऊपर आप अपने कपड़े बिछा लें। आपके पास ओढ़नेको शॉल तो है। वैसे आमके पेड़ोंके कारण और आगके कारण यह मेरी झोंपड़ी गरम हो गयी है। अब आप लेट जायँ। मैं लेट गया। अधिक थका हुआ था। थकावटके कारण कराहने लगा। उसे सुनकर वह आया और आकर मेरे पैर दबाने लगा। मैंने बहुत मना किया पर माना नहीं। वह बूढ़ा था, पर इतनी जोरसे दबा रहा था कि थोड़ी देरमें थकावट दूर हो गयी। फिर बोला—मैं आपकी पीठ दबाता हूँ। तबतक आप कोई हरिचर्चा सुना दें। वह पीठ दबाने लगा। मैं राजा दिलीपकी गोभक्ति सुनाने लगा। मुझे ध्यान ही नहीं चला, मैं कब सो गया। सुबह कब हो गयी मुझे पता नहीं। मुझे झोंपड़ीके बाहर आमके पेड़ोंके नीचे लोगोंकी भीड़ दिखायी दी। घबराकर उठा। क्या हो गया—क्या हो गया? बाहर आया तो पता चला कि एस० डी० त्रिवेदीका लड़का बाहर क्रिकेटका मैच खेलने गया था। खेलकर लौट रहा था कि रास्तेमें सर्पने डस लिया। उसे रातको ही मोटरसे लाया गया। जहरसे उसका पूरा शरीर हरा-नीला पड़ गया। किसीने बताया है कि गनपत बाबा

विष उतारते हैं। अतः यहाँ आये हैं। गनपत बाबा नीमका झोंका लेकर मन्त्र पढ़ रहे थे। वह पैर हिलाने लगा, पर ठीक होता दिखायी नहीं दिया।

इतनेमें किसी आदमीने कहा—मैंने सुना है कि भवानीपुराके एक उपाध्यायजी साँपके काटे स्थानको चीरकर जहर चूस लेते हैं और आदमी बच जाता है चाहे जैसा विषैला सर्प हो। पर उनके पास जल्दी-से-जल्दी पहुँचना चाहिये। गनपत बाबाने कहा कि भवानीपुराके एक पण्डितजी तो हमारी झोंपड़ीमें ही रुके हुए हैं। उन्हें प्राचार्यजीके यहाँ रुकना था पर वे मिले नहीं, तब रातको मेरे पास आकर रुके। यह सुनते ही प्राचार्य एस० डी० त्रिवेदी तथा उनकी पत्नी—दोनों दौड़कर आये और आकर चरणोंमें मस्तक रखकर रोने लगे। आपका हमने बहुत अपमान किया। आपने अपना नाम भी बताया फिर भी हमने उपेक्षा की। वे चरणोंमें पड़कर बेटेके प्राणोंकी भीख माँगने लगे। बेचारी निर्दोष पत्नी; वह पतिके आगे हठ न कर सकी, पछता रही थी।

मैंने प्रत्यक्ष जगदम्बा गोमाताकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया, फिर जगदम्बा राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीको प्रणाम किया। फिर बाहर आया, साँपके काटे स्थानपर चीरा लगाया और विष खींचने लगा और बड़े यत्नसे सारा विष खींच लिया। थोड़ी देरमें बालकने आँखें खोल दीं। फिर मैंने उसे गायका घी पिलाया। बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया। सब लोगोंने मेरे विष चूसनेका चमत्कार देखा। बालक उठकर बैठ गया। प्राचार्यजी एवं उनकी धर्मपत्नीने रोते हुए मुझे प्रणामकर कहा—हम जीवनमें कभी आपका उपकार नहीं भूल सकते। प्राचार्यजी बोले—मैं अपनी नीचतापर शर्मिन्दा हूँ। माता-पिताने बालकको छातीसे लगा लिया। सब जनसमूह मेरी जय-जयकारकर प्रणाम करने लगे। सब लोग चले गये।

प्राचार्य त्रिवेदीजीने मुझे से घर चलनेका आग्रह किया। मैंने कहा—अभी मैं सोकर उठा हूँ। कोई नित्य नियम या भजन—पूजन नहीं किया है। पहले मैं उससे निवृत्त होऊँगा। आप पधारें, आपको विद्यालय जाना होगा। मुझे कोई बन्धन नहीं है। प्राचार्यजीकी पत्नी बोली—आप वहींपर

मैं शौचसे निवृत्त होकर लौटा तो किसानने हाथोंकी शुद्धि करायी, फिर मैं दातून करने लगा। वृद्धने बाल्टीमें ताजा पानी निकाला। मैंने स्नान किया। पुनः सूखे वस्त्र पहनकर तिलक-स्वरूपकर सन्ध्या की। फिर गीता और रामायणका पाठ करने लगा। इसी बीचमें वृद्धने गायका दूध ओंटा लिया था। मैंने पूजा-पाठ करके गायको प्रणामकर प्रदक्षिणा की। उसके गोमयकी मस्तकपर बिन्दी लगायी और कहा—मैया! मेरी तो तीर्थयात्रा पूरी हो गयी। मुझे तो राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हो गया। किसानने कहा—महाराज! मैं आपकी बात समझा नहीं, मुझे खुलकर बतायें। मैंने कहा—मेरी बातपर विश्वास करें, ये तुम्हारी गोमाता ही राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरी हैं और तुम उनके सच्चे पुजारी हो। तुम्हारा गोबरसे लिपा-पुता घर तीर्थ है। तुम्हारी अतिथि-सेवा महायज्ञ है। तुम्हारे कल्याणमें कोई सन्देह

नहीं है। हमारी भारतीय संस्कृतिका मूल गाय है। गव्य पदार्थोंके सेवनके कारण तुम सच्चे अर्थोंमें मानव हो। पाश्चात्य शिक्षा पाकर पढ़े-लिखे लोग अधिक स्वार्थी और चतुर चालाक हो गये हैं, पर वे किसी दूसरेको नहीं स्वयंको ही धोखा देकर अपना सर्वनाश कर रहे हैं।

प्राचार्यजी घर जाकर बच्चेको घरपर छोड़कर पुनः लौट आये थे। वे इस पूरी चर्चाको सुन रहे थे। वे आत्मग्लानिसे भर गये। एक शब्द भी नहीं बोल सके। उनका सिर अब ऊपर नहीं उठ रहा था। वे कर्तव्यसे विमुख हो रहे थे। सब तरहसे असमर्थ देखकर अब उन्होंने मेरे चरण पकड़ लिये और कहा, बड़े लोग बच्चोंके अपराधोंपर ध्यान नहीं देते, मेरे अपराधको आप क्षमा कर दें और घर चलें।

मैंने कहा—आपके घर चलकर क्या करूँगा ? मैं पूर्ण गोब्रती हूँ। गव्य पदार्थोंसे बना हुआ भोजन करता हूँ। पूजापाठ कर ही लिया है। प्राचार्यजीने कहा गाय तो हमारे घरपर भी है। आपने स्वयं रातको देखी तो थी। मैंने कहा वह गाय नहीं, जर्सी है। गायरूपधारी जहरीला पशु! उसीके दूधसे ही तो कैसर, सन्धिवात, मधुमेह, हृदयाघात आदि परे देशमें महामारीकी तरह फैल गये हैं।

इतनेमें प्राचार्यजीने जेबमें हाथ डालते हुए कहा तब मैं आपकी कुछ सेवा कर दूँ? यह सुनकर मेरे नेत्र लाल हो गये। मैंने कहा आपकी औकात देख ली। आप जेबसे हाथ निकाल लें। मुझे पता है आपने भवानीपुरामें सागवानके नामपर आमका फर्नीचर खरीदकर पैसा खाया था। उसकी जाँचमें ही ईमानदार अधिकारीने आपका स्थानान्तरण कर दिया था। ब्राह्मणके नाते अधिक दण्ड नहीं दिया। मुझे आपकी पापकी कमाईमेंसे एक रुपया भी नहीं चाहिये। आपका ऐसा साहस कैसे हुआ?

तब वृद्ध किसानने आकर मेरे चरण पकड़ लिये और हाथ जोड़कर कहा—पण्डितजी! आप मेरे कहनेसे इनके घर चले जाइये। बेचारे इनके आँखोंमें आँसू झलक आये हैं। आप तो विद्वान् हैं, छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान न दें। अब प्राचार्यजी उठे और किसान बाबासे

क्रोधके आवेशमें मैंने आपको जो कुछ उलटा-सीधा कहा है, उसकी मैं क्षमा-याचना करता हूँ। मैं आपका आतिथ्य स्वीकार कर सकता हूँ, पर एक मेरी शर्त है, आप मानें तो। प्राचार्यजीने कहा—आपकी हर शर्त मैं स्वीकार करनेको तैयार हूँ, आप तो आज्ञा कीजिये और हमारे ऊपर कृपा करके आतिथ्य स्वीकार कीजिये। मैंने कहा आप घरपर जर्सी नहीं गाय रखनेका संकल्प लें तो मैं आपके घर आ सकता हूँ। प्राचार्यजीने कहा—मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। उन्होंने हाथमें गोब्रती प्रसाद पाया। प्राचार्यजीने हाथ जोड़कर कहा—अब मैं प्रसन्न हूँ। महापुरुष अपने हृदयमें कोई बात नहीं रखते। उनका क्रोध भी कल्याणकारक होता है। जब आप राजराजेश्वरीके दर्शनकर लौटकर आयेंगे तब मैं गायको आगे करके ही आपका स्वागत करूँगा। मैं प्राचार्यका सत्कार स्वीकारकर पैदल ही राजराजेश्वरी सिद्धेश्वरीके दर्शनको निकल पड़ा; क्योंकि मेरा संकल्प पैदलयात्रा करनेका ही था। भारतीय संस्कृतिकी मूल आतिथेयी गोमाताकी जय!



श्रमका फल

अब्राहम लिंकनने पुस्तक समाप्त नहीं की थी कि एक दिन अचानक बड़े जोरकी जलवृष्टि हुई। अब्राहम लिंकन झोंपड़ीमें रहते थे; पुस्तक वर्षासे भीगकर खराब हो गयी। अब्राहमके मनमें बड़ा दुःख हुआ, पर वे निराश नहीं हुए।

x

‘तुम नहीं किस तरह दे सकोगे? घरपर एक पैसेका भी ठिकाना नहीं है और बात ऐसी करते हो?’ पड़ोसीने झिड़की दी।

‘मुझे अपने श्रमपर विश्वास है। मैं आपके खेतमें मजदूरीकर पुस्तकके दूने दामका काम कर दूँगा।’ अब्राहम लिंकन आशान्वित थे। पड़ोसीको उनका प्रस्ताव ठीक लगा।

अब्राहम लिंकनने मजदूरीके द्वारा पुस्तकके दामकी भरपाई कर दी और जार्ज वाशिंगटनकी जीवनी उन्हींकी सम्पत्ति हो गयी। इस प्रकार अपने श्रमसे उन्होंने अपने पुस्तकालयकी पहली पुस्तक प्राप्त की।

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रातः ७।५६ बजेतक	बुध	चित्रा दिनमें १२।३६ बजेतक	१० अक्टू	शारदीय नवरात्रारम्भ, महाराजा अग्रसेनजयन्ती।
द्वितीया " ७।८ बजेतक	गुरु	स्वाती " १२।३३ बजेतक	११ "	चित्राका सूर्य दिनमें ३।४० बजेसे।
तृतीया " ६।४९ बजेतक	शुक्र	विशाखा " १।० बजेतक	१२ "	भद्रा रात्रिमें ६।५४ बजेसे, वृश्चिकराशि प्रातः ६।५३ बजे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी " ६।५९ बजेतक	शनि	अनुराधा " १।५६ बजेतक	१३ "	भद्रा प्रातः ६।५९ बजेतक, मूल दिनमें १।५६ बजेसे।
पंचमी " ७।४४ बजेतक	रवि	ज्येष्ठा " ३।२४ बजेतक	१४ "	धनुराशि दिनमें ३।२४ बजेसे।
षष्ठी दिनमें ८।५४ बजेतक	सोम	मूल सायं ५।१८ बजेतक	१५ "	मूल सायं ५।१८ बजेतक।
सप्तमी " १०।३१ बजेतक	मंगल	पू० षा० रात्रिमें ७।३३ बजेतक	१६ "	भद्रा दिनमें १०।३१ बजेसे रात्रिमें ११।२८ बजेतक, महानिशा पूजा, मकरराशि रात्रिमें २।११ बजेसे।
अष्टमी " १२।२७ बजेतक	बुध	उ०षा " १०।४ बजेतक	१७ "	श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, दुर्गानवमीव्रत।
नवमी " २।३२ बजेतक	गुरु	श्रवण " १२।४२ बजेतक	१८ "	x x x
दशमी सायं ४।३९ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा " ३।१६ बजेतक	१९ "	विजयादशमी, भद्रा रात्रिशेष ५।३६ बजेसे, कुम्भराशि दिनमें १।५९ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें १।५९ बजे।
एकादशी रात्रिमें ६।३३ बजेतक	शनि	शतभिषा रात्रिशेष ५।३५ बजेतक	२० "	भद्रा रात्रिमें ६।३३ बजेतक, पापांकुशा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी " ८।१० बजेतक	रवि	पू०भा० अहोरात्र	२१ "	मीनराशि रात्रिमें १।४ बजेसे।
त्रयोदशी " ९।२१ बजेतक	सोम	पू०भा० प्रातः ७।३५ बजेतक	२२ "	सोमप्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " १०।६ बजेतक	मंगल	उ०भा० दिनमें ९।७ बजेतक	२३ "	भद्रा रात्रिमें १०।६ बजेसे।
पूर्णिमा " १०।१८ बजेतक	बुध	रेवती " १०।११ बजेतक	२४ "	भद्रा दिनमें १०।१२ बजेतक, मेषराशि दिनमें १०।११ बजेसे, शरत्पूर्णिमा, महर्षिवाल्मीकि-जयन्ती, पंचक समाप्त दिनमें १०।११ बजे।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

श्रीगोपांगनाओंकी महत्ता

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आप भगवान्‌के प्रेमी हैं और ब्रजदेवियोंके प्रति श्रद्धा रखनेवाले हैं; अतः ब्रजांगनाओंके चरित्रकी ऐसी कोई भी आलोचना, जो उन्हें तुच्छ सिद्ध करती हो, या उनके महत्त्वको घटाती हो, आपके हृदयको व्यथा ही देती होगी। आपने नारदभक्तिसूत्रका प्रमाण देकर जो यह बात सिद्ध की है कि गोपीजनोंको भगवान्‌के स्वरूपका पूर्णतः ज्ञान था, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो गोपियाँ भगवान्‌की अन्तरंग शक्तियाँ थीं, जिनके मन-प्राण सदा भगवान्‌में ही लगे रहते थे, वे उनके स्वरूप और महत्त्वको न जानती हों—यह कैसे सम्भव है।

श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके २९ वें अध्यायमें श्रीशुकदेवजीने जो यह कहा कि—‘तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः। जहर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः॥’ फिर राजा परीक्षितने जो शंका की कि—‘कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने।’ इत्यादि, तथा इस शंकाको स्वीकार करके जो शुकदेवजीने उत्तर दिया—‘उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः। द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः॥’ यह सब ठीक है। इस प्रसंगसे गोपीजनोंकी महत्तापर ही प्रकाश पड़ता है। श्रीधर स्वामीने जो अपनी व्याख्यामें लिखा है कि—‘जीवेष्वावृतं ब्रह्मत्वं कृष्णस्य तु हृषीकेशत्वादनावृतमतो न तत्र बुद्ध्यपेक्षा।’ अर्थात् जीवोंका चेतनभाव या चित्स्वरूपता आवृत है, अतः उसको समझनेके लिये ज्ञानकी आवश्यकता है; परंतु श्रीकृष्ण तो सबकी इन्द्रियोंके नियामक एवं अन्तर्यामी हैं, इसलिये उनका चिन्मय स्वरूप आवृत नहीं है। अतः उनके इस स्वरूपकी अनुभूतिके लिये या उनके चिन्तनसे होनेवाली मुक्तिकी सिद्धिके लिये ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है। इसके द्वारा श्रीकृष्णके अनावृत सच्चिदानन्दघनस्वरूपका प्रतिपादनमात्र किया गया है। इसका भाव यह नहीं समझना चाहिये कि गोपियोंकी उनके प्रति परमात्मबुद्धि नहीं थी, या वे उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानती

थीं, ‘अखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्’ इत्यादि पदोंसे भी इस धारणाकी पुष्टि हो जाती है।

यह सब होनेपर भी भगवान्‌की स्वरूपभूत माया शक्ति या लीलाशक्ति उनके ज्ञानको तिरोहित तथा प्रेमभावको ही प्रायः जाग्रत् किये रहती है। श्रीकृष्ण परमात्मा या ब्रह्म हैं, इस भावका स्मरण उन्हें नहीं रहता; वे यही अनुभव करती हैं—श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं, प्राणवल्लभ हैं। आपको ‘जारबुद्ध्यापि’ यह कहना खटक सकता है। ब्रह्माजी भी जिनकी चरणरजकी वन्दना करते हैं तथा उद्धव-जैसे ज्ञानी भी जिनकी चरणरेणु होनेके लिये तरसते हैं, उन ब्रजललनाओंकी भी सच्चरित्रताका समर्थन करना पड़े, उनके चरित्रपर भी सन्देहका अवसर आये—यह आपहीको नहीं, सभी भगवत्प्रेमियोंको व्यथा देता है। गोपियोंके प्रेमके साथ शिशुपालके भगवत्स्मरणकी चर्चा भी आपको पसंद नहीं आयी। परंतु ऐसा होनेका कोई कारण नहीं दिखायी देता। शिशुपाल तो भगवान्‌का परम अन्तरंग पार्षद था, वह शापग्रस्त होनेके कारण भगवान्‌से पृथक् पड़ा था, उसने द्वेषभावसे भगवान्‌का निरन्तर स्मरण किया था; अतः उसका महत्त्व कम नहीं मानना चाहिये।

आपके यहाँके विद्वान् जो यह कहते हैं कि ‘गोपियोंके मनमें काम ही था, प्रेम नहीं’ उनका यह कथन श्रीगोपीजनोंके महत्त्वको न जाननेके कारण ही है। उनके इस कथनका विरोध तो श्रीमद्भागवतमें ही हो जाता है। शास्त्रमें कहा है—‘प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्’—गोपियोंका प्रेम ही लोकमें कामके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गोपियाँ प्रेमकी प्रतिमूर्ति थीं। उनके मनमें लौकिक कामकी गन्ध भी नहीं थी। उनके लिये जो ‘जारबुद्ध्यापि’ इस पदका प्रयोग किया गया है, यह भी उनकी महत्ताका ही परिचायक है। जब उनमें लौकिक काम नहीं, अंगसंगकी वासना नहीं, तब वहाँ लौकिक जारभाव या औपपत्यकी कल्पना कैसे की जा सकती है?

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह प्रश्न श्रीकृष्ण और गोपियोंके स्वरूपको भुलाकर ही किया

आपका कृपापत्र मिला था। उत्तरमें देर हुई, इसके लिये क्षमा करें। आपको गोपीभावकी उपासना प्रिय है, सो बड़ी ही अच्छी बात है। परंतु सावधान रहियेगा, कहीं मनमें कामभावना, इन्द्रियसुखेच्छा न पैदा हो जाय। गोपीभाव 'सर्वसमर्पण' का भाव है। इसमें निज-सुखकी इच्छाका सर्वथा त्याग है। गोपीभावमें न तो लहंगा साड़ी या चोली पहननेकी आवश्यकता है, न पैरोंमें नूपुर और नाकमें नथकी ही। गोपीभावकी प्राप्तिके लिये श्रीगोपीजनोंका ही अनुगमन करना होगा। ध्यान कीजिये—श्रीकृष्ण मचल रहे हैं और माँ यशोदा उन्हें माखन देकर मना रही हैं। श्रीकृष्ण कुंजमें पधार रहे हैं, श्रीमती राधिकाजी उनकी अगवानीकी तैयारीमें लगी हैं। गोपीभावमें खास बात है 'रसकी अनुभूति।' 'श्रीकृष्ण ही मेरे एकमात्र प्राणनाथ हैं। वे ही परम प्रियतम हैं। उनके सिवा मेरा और कुछ भी नहीं है।' इतना कह देनेमें ही रस नहीं मिलता। रसके लिये रसभरा हृदय चाहिये। वाणीसे बाह्य रसका भानमात्र होता है। एक पतिप्राणा पत्नी प्रेमभरे हृदयसे पतिको जब 'प्राणनाथ' और 'प्रियतम' कहती है, तब उसके हृदयमें यथार्थ ही यह भाव मूर्तिमान् रहता है। इसीसे उसे रसानुभूति होती है। इसीसे वह प्राणनाथके लिये अपने प्राणोंका उत्सर्ग करनेमें नहीं हिचकती या यों कहना चाहिये कि उसके प्राणोंपर असलमें पतिका ही अधिकार होता है। पतिको प्रियतम कहते समय उसके हृदयमें स्वाभाविक ही एक गुदगुदी होती है, आनन्दकी रस-लहरी छलकती है, इसी प्रकार भक्तका हृदय भगवान्को जब सचमुच अपना 'प्राणनाथ' और 'प्रियतम' मान लेता है, तभी वह गोपीभावकी प्राप्तिके योग्य होता है और ठीक पत्नीकी भाँति जब भगवान्को पतिरूपमें वरण कर लिया जाता है, तभी उन्हें 'प्रियतम' और 'प्राणनाथ' कहा जा सकता है। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

श्रीरामायणके अखण्ड पाठका अमोघ फल

मंत्र महामनि बिषय ब्याल के । मेतत कठिन कुअंक भाल के ॥

मन्त्रोंमें वह अमोघ शक्ति होती है कि वे भाग्यमें लिखे दुर्भाग्यको भी पलट देते हैं। प्रस्तुत घटना इसी तथ्यकी पुष्टि करती है। बात उस समयकी है, जब मैं २३ वर्षका अनुभवहीन, अपरिपक्व नवयुवक था। मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्ण करते ही मेरी नियुक्ति नगरपालिका पुस्तकालय एवं वाचनालयमें लाइब्रेरियनके पदपर हो गयी। प्रारम्भिक एक वर्षमें ही मेरे कामका प्रभाव मेरे अधिकारियों, सहकर्मियों एवं जनतापर अच्छा पड़ा। अतः लगभग एक-डेढ़ वर्ष बाद ही मेरे अनुरोधपर मुझे नगरपालिका पूर्व माध्यमिक विद्यालयमें सहायक शिक्षकके पदपर स्थानान्तरित कर दिया गया। यहाँ भी मेरे कार्यसे मेरे प्रधान अध्यापक, सहशिक्षक एवं छात्र सभी प्रसन्न थे और मेरी गणना अच्छे अध्यापकोंमें की जाती थी।

परंतु अचानक ही क्या कुछ ऐसा हुआ, जिसकी मुझे जानकारी नहीं है, नगरपालिकाके उपाध्यक्ष, उनके पार्षद एवं अधिकारी मुझसे रुष्ट हो गये। अचानक ही समाचार मिला कि मुझे पदावनत करके प्राथमिक शालामें सहायक शिक्षकके पदपर स्थानान्तरित किये जानेके लिये नगरपालिका महासभामें प्रस्ताव प्रस्तुत किया जानेवाला है! समाचार मिलते ही मैं व्यथित होनेके साथ ही हतबुद्धि रह गया। मुझे सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाय! खुशामद एवं चापलूसी तो मुझे आती ही नहीं थी। अपने कामके प्रति ईमानदारी एवं निष्ठा ही मेरा स्वभाव था।

अन्तमें निराश-हताश होकर यह विचार आया कि अब तो प्रभुकी शरणमें जानेके सिवाय कोई चारा नहीं है। वैसे मैं प्रतिदिन पूजा-उपासनाके उपरान्त श्रीरामायणका पाठ निष्ठापूर्वक किया करता था। अचानक न जाने किस प्रेरणासे यह निश्चय किया कि अपनी लज्जाके रक्षणके लिये 'श्रीरामायण' का अखण्ड पाठ किया जाय। वह शनिवारका दिन था, जबकि महासभामें मेरे विरुद्ध प्राथमिक

शालामें स्थानान्तरणका प्रस्ताव रखा जानेवाला था। अतः शनिवारको ही मैं प्रातःकाल छः बजे संकल्प लेकर श्रीरामायणके सम्पूर्ण अखण्ड पाठके लिये बैठ गया।

दूसरा दिन रविवार था। प्रातः लगभग ६.३० बजे पाठ समाप्त करनेके उपरान्त पूर्णाहुति हवन किया एवं प्रसाद हाथमें लेकर बैठकके दरवाजेके बाहर खड़ा हुआ ही था कि नगरपालिकाके लेखापाल (एकाउन्टेन्ट) मेरे सामनेवाली सड़कसे बड़े मठकी ओर जाते दिखायी दिये। दरवाजेके समीप मुझे खड़ा देखकर उन्होंने पूछा कि थवाईत कुछ मालूम है?.... फिर कुछ पल चुप रहकर वे स्वयं बोले—हमारे बड़े बाबूको पदावनत कर दिया गया है। समाचार सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। फिर उत्सुकतापूर्वक गिरे मनसे मैंने पूछा—और मेरे सम्बन्धमें महासभाकी बैठकमें क्या हुआ? उन्होंने कहा कुछ तो नहीं। कोई बात ही नहीं हुई। यह सुनते ही मेरे चेहरेपर प्रसन्नताकी रेखा दौड़ गयी। मन-ही-मन प्रभुकी इस अहैतुकी कृपापर गदगद् होकर प्रभु-चरणोंमें सादर प्रणाम किया। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि यह सब 'श्रीरामायण' के अखण्ड पाठका ही प्रतिफल था।

अब तो प्रभु-चरणोंमें मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया। मैंने कई बार सुना था कि श्रीरामायणका सुन्दरकाण्ड मन्त्रस्वरूप है। लोग प्रायः इसका पुरश्चरण करके शीघ्र ही अपने अभीष्ट फलकी प्राप्ति कर लेते हैं। सम्पुटके द्वारा शीघ्र अभीष्ट फल प्राप्त करनेके लिये ये मन्त्र प्रसिद्ध हैं—

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवड सो दसरथ अजिर बिहारी ॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥

परन्तु मेरे पक्षमें तो बिना सम्पुटके ही प्रभुका अमोघ अनुग्रह मिल गया था, तब सम्पुट लगाकर विधिवत् पुरश्चरण करनेपर शीघ्र ही प्रभुका अनुग्रह मिलेगा और अभीष्टकी प्राप्ति होगी—इस ध्रुव सत्यमें भला क्या सन्देह है।—नत्थलाल थवाईत

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सन्तकी परदुःखकातरता

यह मेरी आँखों देखी सत्य घटना है। बात सन् १९५४ ई० की है। मैं शिक्षकीय प्रशिक्षणहेतु नार्मल स्कूल सागरमें अध्ययनरत था। वहाँ मेरे एक अध्यापक थे, नाम था श्रीबाबूलाल खरे। परिश्रमी, ईमानदार एवं सेवाव्रती। परिवारमें उनकी पत्नी, दो बेटियाँ लीला और कृष्णा तथा एक बेटा था, जिसका नाम भगवती था।

भगवतीकी आयु लगभग सात या आठ वर्षकी थी। परिवारकी गाड़ी अच्छे ढंगसे चल रही थी। श्रीबाबूलालजी उस समय अपनी एम०ए० की परीक्षाकी तैयारीमें व्यस्त थे।

अप्रैलका महीना। एक दिन अचानक भगवतीको बुखार आ गया। तीन-चार दिन निकल गये, किंतु बुखार उतरनेका नाम ही नहीं ले रहा था। इसी बीच भगवतीकी पेशाब रुक गयी। वह बार-बार पानीकी माँग करता। पानी पीता, किंतु उसे पेशाब बिलकुल ही नहीं हो रही थी। परिणामतः उसका पेट एकदम फूलकर फटने-सा लगा। वह बेहोश हो गया।

स्थानीय शासकीय अस्पतालमें उसे भरती कर दिया गया। हम तीन-चार साथी बारी-बारीसे उसकी देखभाल करनेके लिये अस्पतालमें ही बने रहते। अस्पतालके डॉक्टरोंने उसके बचनेकी आशा छोड़ दी और हम लोगोंसे कहा कि इसे घर ले जाओ।

श्रीबाबूलालजीके साथ हम सब लोग उसे घर ले आये। बरामदेमें एक दरी बिछाकर लिटा दिया। वह अभी भी बेहोश था। अस्फुट शब्दोंमें बार-बार पानी माँगता था। पेशाब आना अभी भी बन्द था। उसकी अन्तिम साँस चल रही थी। हम सभी लोग पूरी तरह निराश थे। बाबूलालजीकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपक रहे थे। भगवतीकी माँ बेहाल होकर रो रही थी। सभी लोग निरुपाय थे। कब क्या हो जाय—इसका कोई ठिकाना नहीं था।

इसी बीच वहाँ पड़ोसकी एक बुढ़िया आयी, उसकी उम्र लगभग पचहत्तर वर्ष थी। भगवतीके सिरपर हाथ फेरते हुए उसने श्रीबाबूलालजीसे कहा—काय रे बाबूलाल,

तैने तो सबई डॉक्टरोंकी दवाई करा ली। अब एक काम और कर ले बेटा। शनीचरी मुहल्लेमें एक कुटियामें एक बाबा रहते हैं। तनिक उन्हें बुलाके और दिखा ले।

श्रीबाबूलालजीने मुझसे कहा—‘सनातन! जाकर देख लो कौन बाबाजी हैं। आ सकें तो लिवा लाओ।’ मैं दौड़ता-दौड़ता कुटियाका पता लगाकर उन सन्तके पास पहुँचा। उन्हें संक्षेपमें पूरी घटना सुनायी। बाबूलालजीके विषयमें यह बात प्रसिद्ध थी कि वे साधु-सन्तोंको ढोंगी मानते हैं, परंतु उनमें बेटेकी हालत सुनते ही वे सन्त करुणासे भर गये और लपकते हुए तुरंत मेरे साथ श्रीबाबूलालजीके घर पहुँच गये। भगवतीके सिरपर हाथ फेरा। पेटको टटोला और उठकर खड़े हो गये। मुझसे कहा—चलो मेरे साथ। मैं उनके साथ पुनः उनकी कुटियामें पहुँचा। उन्होंने कोई जड़ी-बूटी मेरे हाथमें थमाते हुए कहा। इसे ले जाओ। थोड़ेसे दूधके साथ मिलाकर पीसकर उसे पिला दो। उसे पानी बिलकुल मत पिलाना। जब भी पानी माँगे तो बर्फका एक टुकड़ा उसके मुँहमें डालते जाना। ईश्वर चाहेगा तो वह जल्दी ही ठीक हो जायगा। सभी लोग उसके पास बैठकर ईश्वरका भजन करें। रोयें-गायें नहीं। चिन्ताकी कोई बात नहीं है।

वहाँसे लौटकर मैंने दवा भगवतीकी माँको दी। सन्तने जो भी बातें कही थीं, उनकी जानकारी सभी लोगोंको दी। भगवतीको तुरंत दवा पीसकर पिलायी गयी। पाँच मिनटके बाद ही उसको पेशाब होना शुरू हो गया। अनेक बार पेशाब हुई। एक घण्टेके भीतर ही उसका पेट पूरी तरह सामान्य हो गया। उसको होश भी आ गया। तीन-चार घण्टेके बाद वह उठकर बैठ गया। हम सभी लोग ईश्वरके इस चमत्कारपर आश्चर्यचकित थे। जिसे बड़े-बड़े डॉक्टर ठीक नहीं कर सके थे, उसे उन सन्तकी दवा एवं उनके आशीर्वादने कुछ ही घण्टोंमें स्वस्थ कर दिया। धन्य हैं वे सन्त और धन्य है उनकी परदुःखकातरता।

श्रीबाबूलालजी अब दुनियाँमें नहीं हैं, किंतु भगवती आज भी स्वस्थ है। शासकीय नौकरीमें है।

—सनातन कुमार वाजपेयी

मोडसिंहने कहा—‘किसी मुकदमेमें मुझको मत घसीटना। मैं बता रहा हूँ। मैं ठाकुर स्योदानसिंहजीका लड़का हूँ। आठवीं जमाततक पढ़ा हूँ। मेरे पिताजीसे शत्रुता रखनेवाले एक राजपूत अफसरके द्वारा चोरीके झूठे मुकदमेमें मैं फँसा दिया गया था और मुझे एक वर्षकी कैदकी सजा मिली! मेरा कोई पिछले पापका भोग था। कैदखानेसे छूटकर आनेपर कहीं कोई नौकरी नहीं मिली। मेरे पिताजीने सात वर्षतक इन सेठ हजारीमलजीके यहाँ पहेरेदारकी नौकरी की थी। तबीयत खराब होनेसे वे नौकरी छोड़कर घर चले आये थे। आते समय सेठजीने तीन हजार रुपये इनामके दिये थे और मेरे पिताजीके माँगनेपर अपना एक फोटो दिया था, जो अबतक हमारे घरमें टँगा है। पिताजी नौकरी छोड़कर

सेठ हमीरमल मोडसिंहकी नमकहलालीका यह जीता-जागता आदर्श देखकर चकित रह गया। हमीरमलने मोडसिंहको बड़े प्रेमसे बैठाया, जलपान कराया, तब बिदा किया। (इस घटनामें नाम बदलकर लिखे गये हैं, घटना परानी पर सत्य है।) — समेरमल जैन

(3)

त्याग-प्रधान भारतीय संस्कृतिकी सजीव मूर्ति
मैं साबरकांठाके एक गाँवमें घूम रहा था। सन्ध्याके
समय एक बुढ़िया मेरे पास आयी। शरीरपर फटी साड़ी
लिपटी थी। चेहरेपर सिकन पड़ी थी। दरिद्रताकी
अवतार-सरीखी दीख पड़ती थीं वह बुढ़िया माई।

मनन करने योग्य

तर्पण और श्राद्ध

एक बार महाराज करन्धम महाकालका दर्शन करने गये। कालभीतिने जब करन्धमको देखा, तब उन्हें भगवान् शंकरका वचन स्मरण हो गया। उन्होंने उनका स्वागत-सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादिके बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये। तदनन्तर उन्होंने महाकाल (कालभीति) से पूछा—‘भगवन्! मेरे मनमें एक बड़ा संशय है कि यहाँ जो पितरोंको जल दिया जाता है, वह तो जलमें ही मिल जाता है; फिर वह पितरोंको कैसे प्राप्त होता है? यही बात श्राद्धके सम्बन्धमें भी है? पिण्ड आदि जब यहीं पड़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितरलोग उन पिण्डादिका उपयोग करते हैं। साथ ही यह कहनेका साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरोंको किसी प्रकार मिलते ही नहीं; क्योंकि स्वप्नमें देखा जाता है कि पितर मनुष्योंसे श्राद्ध आदिकी याचना करते हैं। देवताओंके चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। अतः मेरा मन इस विषयमें मोहग्रस्त हो रहा है।’

महाकालने कहा—‘राजन्! देवता और पितरोंकी योनि ही इस प्रकारकी है कि दूरसे कही हुई बात, दूरसे किया हुआ पूजन-सत्कार, दूरसे की हुई अर्चा, स्तुति तथा भूत, भविष्य और वर्तमानकी सारी बातोंको वे जान लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं। उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों (पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण) का बना होता है, दसवाँ जीव होता है; इसलिये उन्हें स्थूल उपभोगोंकी आवश्यकता नहीं होती।’

करन्धमने कहा, ‘यह बात तो तब मानी जाय, जब पितर लोग यहाँ भूलोकमें हों, परन्तु जिन मृतक पितरोंके लिये यहाँ श्राद्ध किया जाता है, वे तो अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरकमें चले जाते हैं। दूसरी बात, जो शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि पितरलोग प्रसन्न होकर मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, राज्य, स्वर्ग या मोक्ष प्रदान करते हैं, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि जब वे स्वयं कर्मबन्धनमें पड़कर नरकमें हैं, तब दूसरोंके लिये कुछ कैसे करेंगे!’

महाकालने कहा—‘ठीक है, किंतु देवता, असुर, यक्ष

आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णोंके चार मूर्त—ये सात प्रकारके पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं। ये कर्मोंके अधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। इन नित्य पितरोंके अत्यन्त प्रबल इक्कीस गण हैं। वे तृप्त होकर श्राद्धकर्ताके पितरोंको, वे चाहे कहीं भी हों, तृप्त करते हैं।’

करन्धमने कहा, ‘महाराज! यह बात तो समझमें आ गयी; किंतु फिर भी एक सन्देह है—भूत-प्रेतादिके लिये जैसे एकत्रित बलि आदि दी जाती है, वैसे ही एकत्र ही संक्षेपसे देवतादिके लिये भी क्यों नहीं दी जाती? देवता, पितर, अग्नि—इनको अलग-अलग नाम लेकर देनेमें बड़ा झंझट तथा विस्तारसे कष्ट भी होता है।’

महाकालने कहा—‘सभीके विभिन्न नियम हैं। घरके दरवाजेपर बैठनेवाले कुत्तेको जिस प्रकार खानेको दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्तिको भी दिया जाय? और क्या वह उस तरह दिये जानेपर स्वीकार करेगा? अतः जिस प्रकार भूतादिको दिया जाता है, उसी प्रकार देनेपर देवता उसे नहीं ग्रहण करते। बिना श्रद्धाके दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा बहुमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं लेते। श्रद्धापूर्वक पवित्र पदार्थ भी बिना मन्त्रके वे स्वीकार नहीं करते।’

करन्धमने कहा—‘मैं यह जानना चाहता हूँ कि जो दान दिया जाता है, वह कुश, तिल और अक्षतके साथ क्यों दिया जाता है?’ महाकालने कहा—‘पहले भूमिपर जो दान दिये जाते थे, उन्हें असुरलोग बीचमें ही घुसकर ले लेते थे। देवता और पितर मुँह देखते ही रह जाते। आखिर उन्होंने ब्रह्माजीसे शिकायत की। ब्रह्माजीने कहा कि—पितरोंको दिये गये पदार्थोंके साथ तिल, जल, कुश एवं जो देवताओंको दिया जाय, उसके साथ अक्षत (जौ, चावल) जल, कुशका प्रयोग हो। ऐसा करनेपर असुर इन्हें न ले सकेंगे। इसीलिये यह परिपाटी है।’ अन्तमें युगसम्बन्धी शंकाओंको भी दूरकर कृतकृत्य हो करन्धम लौट आये।

[स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड]

कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[२५ सितम्बरसे पितृपक्ष (महालय) आरम्भ हो रहा है।]

नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [सजिल्द] (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹ ७० गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी।

जीवच्छाद्ध-पद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹ ७०

अन्यकर्म-श्राद्धप्रकाश [ग्रन्थाकार] (कोड 1593)—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹ १४५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹ ४०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹ ३५

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्याय अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹ १६

महाभारत सटीकके अब सभी खण्ड उपलब्ध

कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹	कोड	खण्ड	विवरण	मूल्य ₹
32	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—आदिपर्वसे सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५	35	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५
33	द्वितीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—वनपर्वसे विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५	36	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	३७५
34	तृतीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५	37	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार—अनुशासनपर्वसे स्वर्गरोहणपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	३७५

728 महाभारत-सटीक (छः खण्डोंका) मूल्य ₹ २२५०

साधन-सुधा-सिन्धु (कोड 465) ग्रन्थाकार—यह ग्रन्थ गीताप्रेससे प्रकाशित ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत लगभग ५० पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश, वेष, भाषा एवं सम्प्रदायके साधकोंके लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। पृष्ठ-संख्या १००८, कपड़ेकी मजबूत जिल्द एवं सुन्दर रंगीन, लेमिनेटेड आवरणसहित। मूल्य ₹ २००, (कोड 1630) गुजराती और (कोड 1473) ओड़िआमें भी उपलब्ध।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार



द्वान्दश ज्योतिर्लिंग (कोड 2155) [पुस्तकाकार] —शिवभक्तोंके लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। इसमें द्वान्दश ज्योतिर्लिंगोंका सचित्र इतिहास, उनकी भौगोलिक स्थिति, सचित्र पौराणिक आख्यान, सांस्कृतिक विवरण, पर्वोत्सव, यातायात एवं ठहरनेके स्थान तथा लिङ्ग-रहस्य इत्यादिका विस्तृत विवेचन किया गया है। मूल्य ₹४०

श्रीरामचरितमानस (कोड 2166) सजिल्द, मोटा टाइप, अर्थसहित, ग्रन्थाकार, सामान्य संस्करण—प्रस्तुत ग्रंथ जन-सामान्यको ध्यानमें रखते हुए लागत मूल्यसे बहुत कम मूल्यपर प्रकाशित किया गया है, जिससे अधिक-से-अधिक पाठक श्रीरामचरितमानसके पाठका लाभ उठा सकें। कुल पृष्ठ-संख्या ८४८, मूल्य ₹१५०

नल-दमयन्ती (कोड 2150) असमिया—इस पुस्तकमें महाभारतके आधारपर परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा प्रणीत नल-दमयन्तीके चरित्रका मनोहर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹ ६

ईशावास्योपनिषद् (कोड 1844) मराठी—उपनिषदोंमें ईशावास्योपनिषद्का सर्वप्रथम स्थान है। यह शुक्ल यजुःसंहिताके ज्ञानकाण्डका चालीसवाँ अध्याय है। सानुवाद, शाङ्करभाष्य। मूल्य ₹१०

श्रीगुरुचरित्र (कोड 2148) तेलुगु, [ग्रन्थाकार]—प्रस्तुत पुस्तक ओवी छन्दोबद्ध मराठी मूलका विधेयात्मक तेलुगु भाषाका भावानुवाद है। पहली बार तेलुगु भाषामें श्रीगुरुचरित्र सुन्दर, सुबोध, सरल एवं सरस भावानुवाद प्रकाशित हुआ है। आशा है, तेलुगु भाषाके जिज्ञासुओंके लिये यह उपयोगी सिद्ध होगा। मूल्य ₹२००

श्रीमद्भगवद्गीता (कोड 2162) नेपाली, श्लोकार्थसहित, [पॉकेट साइज] —इसमें मूल श्लोक-सहित नेपाली भाषामें श्लोकार्थ तथा गीताजीकी महिमा एवं त्यागसे भगवत्प्राप्तिका सरस वर्णन किया गया है। आशा है, नेपाली भाषाके पाठकोंके लिये यह अत्यन्त उपयोगी होगा। मूल्य ₹ १८

सरल गीता (कोड 2163) नेपाली, श्लोकार्थसहित, [पुस्तकाकार] —प्रस्तुत पुस्तकको गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंकी सुविधाके लिये मूल श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी। प्रत्येक श्लोकके नीचे उसका नेपाली भाषामें अर्थ भी दिया गया है ताकि पाठकोंको श्लोकोंके पढ़ने और उसका भाव समझनेमें ज्यादा सरलता हो। मूल्य ₹ ३५

गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित मार्च, २०१८ तकके विभिन्न संस्करण

१.	श्रीमद्भगवद्गीता	१३६५ लाख
२.	श्रीरामचरितमानस एवं तुलसी-साहित्य	१०४९ लाख
३.	पुराण, उपनिषद् आदि ग्रन्थ	२४७ लाख
४.	महिलाओं एवं बालकोपयोगी साहित्य	१०८९ लाख
५.	भक्तचरित्र एवं भजनमाला	१५५३ लाख
६.	अन्य प्रकाशन	१३३७ लाख

कुल—६६ करोड़ ४० लाख

शीघ्र प्रकाश्य—

श्रीभक्तमाल (कोड 2161) गुजराती, ग्रन्थाकार—भक्तमाल परमभागवत श्रीनाभादासजी महाराजकी काव्यमयी रचना है। इसमें चारों युगों, विशेषकर कलियुगके भक्तोंका बड़े ही रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। (कोड 2066) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

पुस्तकोंका आर्डर व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरखपुर—273005 के ही पतेपर भेजें।